ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-1, अंक-8, अगस्त -2025

Krishakmanch.com

कृषक मंच

मासिक कृशि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष

सब्जी विज्ञान विभाग

कृशि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस वि ववविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक

शोधार्थी

ए.के.एस. वि ववविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय वि ववविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल वि ववविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

श्री कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक/शोधार्थी
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. रविशंकर पटेल
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा वि ववविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल वि ववविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुश्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस वि ववविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. देवे I तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय वि ववविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठए फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. वि ववविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

ISSN: 3049-2211

विषय वस्तु

क्रम संख्या	लेख शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	सिंघाड़े की बागवानी और देखभाल के आसान तरीके	4
2	लीफ स्पॉट रोगः कारण और नियंत्रण	9
3	नीलगिरी की तकनीकी जानकारी एवं उपयोग व आय का स्रोत	11
4	बिहार में मत्स्य पालन के लिए सरकारी योजनाएँ और उनका प्रभाव	14
5	जलजीविका की नई राह: मत्स्य पालन एवं जलीय कृषि में मैनेज, हैदराबाद की प्रभावी भूमिका	18
6	प्रायिकता : एक संकल्पना और उसका कृषि में प्रयोग	21
7	फॉल आर्मीवर्म: मक्का का प्रमुख कीट	23
8	अपने कृषि अपशिष्ट को काले सोने(ब्लैक गोल्ड) में बदलें: बायोचार बनाने में एक किसान के लिए मार्गदर्शिका	26
9	बागवानी और सब्जी फसलों में कार्बन पृथक्करण	29
10	जैविक खेती और प्राकृतिक खेती : सतत कृषि का आधार	32
11	मल्चिंग: सतत कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम	35
12	सरसों की फसलों में एफिड (रस चूसने वाला कीट) समस्या: किसानों के लिए एक विस्तृत सुझाव	39
13	वास्तु और कृषि: समृद्धि की धरती	42
14	पशुओं एवं मुर्गियों में विटामिन ए का महत्व	45
15	गाजर घास (पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस) एक विनाशकारी खरपतवार	47
16	शून्य बजट प्राकृतिक खेती किसान की समृद्धि का मार्ग	50
17	गेंदा की खेती	53
18	जैव कीटनाशकों से कीट नियंत्रण: किसानों का नया हथियार	55
19	नमो ड्रोन दीदी योजना के माध्यम से कृषि में महिलाओं का तकनीकी सशक्तिकरण	57
20	बाजरे की उन्नत खेती	59
21	मधुमक्खी पालनः किसानों की आय संवर्धन का स्रोत	63
22	जलवायु परिवर्तन का फूलों की किस्मों पर प्रभाव उत्पादकों के अनुकूलन के उपाय	69
23	हाइड्रोपोनिक्सः टिकाऊ कृषि द्वारा वैश्विक खाद्य संकट का समाधान	73
24	अरहर फसल में कीट प्रबंधन	79
25	नीम आधारित बायोपेस्टीसाईडः कारगर और पर्यावरण-अनुकूल	82
26	रेगिस्तान का जहाज ऊंट एव उसका संरक्षण	84

ISSN: 3049-2211

सिंघाड़े की बागवानी और देखभाल के आसान तरीके

स्नेहल गुप्ता, प्रज्ञा महोबे एवं उज्ज्वल कुमार

पीएच.डी. शोधार्थी, पादप कार्यकी, कृषि जैव रसायन,

औषधीय एवं सुगंधित पौधे विभाग, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

परिचय

सिंघाड़ा, जिसे वाटर चेस्टनट (*Trapa natans*) भी कहा जाता है, एक पारंपरिक और कृषि दृष्टि से महत्वपूर्ण फसल है, जो पोषण लाभ के साथ आर्थिक अवसर भी प्रदान करती है। अपनी कुरकुरी बनावट और विशिष्ट स्वाद के कारण यह न केवल कई क्षेत्रीय व्यंजनों का प्रमुख हिस्सा है, बल्कि देशभर में अनेक किसानों की आजीविका का अहम आधार भी है।

यह जलीय पौधा आर्द्रभूमि और तालाबों में अच्छी तरह बढ़ता है, जिसके लिए विशेष अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, जो भारत के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। स्वास्थ्यवर्धक और स्थानीय खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग को देखते हुए, सिंघाड़ा बागवानी की तकनीकों, चुनौतियों और बाजार प्रवृत्तियों की समझ अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है।

इस लेख का उद्देश्य भारत में सिंघाड़ा बागवानी (Water Chestnut Gardening) का विस्तृत परिचय देना है, जिसमें इसके ऐतिहासिक महत्व, खेती की पद्धतियाँ, कीट प्रबंधन के उपाय और टिकाऊ कृषि में इसकी भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है |

सिंघाड़े के लिए उपयुक्त जलवायु

सिंघाड़ा विभिन्न क्षेत्रों में उगाया जा सकता है, लेकिन यह विशेष रूप से ठंडे तापमान वाले इलाकों और झील, तालाब व धाराओं जैसे उपयुक्त जल स्रोतों के लिए अनुकूल होता है। अपने विकास चक्र के हर चरण में इसे निश्चित पानी के तापमान की आवश्यकता होती है।

अंकुरण के लिए 12–15°C पानी का तापमान सबसे उपयुक्त होता है, जबकि पौधे की वृद्धि और विकास 25–30°C के अपेक्षाकृत गर्म पानी में बेहतर होते हैं। सिंघाड़ा ठंडी जलवायु में अधिक उत्पादक होता है, विशेषकर सर्दियों में, जब इसकी कटाई आमतौर पर की जाती है।

सिंघाड़े के लिए मृदा का चयन

सिंघाड़े की खेती के लिए चिकनी या गाद मिश्रित दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है, क्योंकि इसकी जल धारण क्षमता अधिक होती है, जो इस जलीय पौधे के लिए आवश्यक है। सिंघाड़े पोषक तत्वों से समृद्ध

मिट्टी में अच्छी तरह विकसित होते हैं, विशेषकर ऐसी मिट्टी में जिसमें पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन और जैविक पदार्थ मौजूद हों। इसकी वृद्धि के लिए मिट्टी का पीएच स्तर तटस्थ से थोड़ा क्षारीय (लगभग 7) होना आदर्श होता है।

सिंघाड़े (Water Chestnut) की सिंचाई के लिए उपयोग किया जाने वाला पानी न तो अधिक खारा होना चाहिए और न ही अत्यधिक अम्लीय; इसका पीएच स्तर तटस्थ के करीब होना चाहिए। मिट्टी में जैविक पदार्थ जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट या पत्तों का सड़ा हुआ अवशेष मिलाने से मिट्टी की बनावट, उपजाऊ क्षमता और नमी को संचित रखने की क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

सिंघाड़े के लिए खेत की तैयारी

सिंघाड़े की खेती के लिए खेत की तैयारी में कई जरूरी चरण शामिल होते हैं। इसके लिए ऐसा खेत चुना जाना चाहिए जो तालाब जैसा जल स्रोत हो या फिर उथला, पानी से भरा क्षेत्र हो। मृदा प्रबंधन का उद्देश्य मिट्टी को जैविक तत्वों से समृद्ध बनाना होता है, जिसमें खाद या गोबर की खाद (FYM) जैसे जैविक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। जब खेत पूरी तरह तैयार हो जाता है और उसमें पर्याप्त पानी भर जाता है, तब उसमें या तो सीधे बीज बोए जाते हैं या फिर पहले से उगाए गए पौधों की जड़ें रोपी जाती हैं।

विशेष: सिंघाड़े (Water Chestnut) की खेती तालाबों या उथले जल युक्त खेतों में की जा सकती है, जहाँ पानी की गहराई तालाबों में लगभग 1.20 से 1.80 मीटर और उथले खेतों में 30 से 45 सेंटीमीटर होनी चाहिए। इसके लिए भारी, गादयुक्त और जैविक तत्वों से समृद्ध मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है, क्योंकि सिंघाड़े ऐसे पर्यावरण में बेहतर तरीके से विकसित होते हैं।

सिंघाड़े की उन्नत किस्में

भारत में अनुसंधान और विकास के प्रयासों के तहत उच्च उपज देने वाली और कीट व रोग प्रतिरोधी सिंघाड़े की उन्नत किस्मों को विकसित किया जा रहा है। इस दिशा में "स्वर्ण लोहित" जैसी किस्म एक प्रमुख उदाहरण है। नीचे कुछ उन्नत सिंघाड़े (Water Chestnut) की किस्मों की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गई है।-

स्वर्ण लोहित: यह एक उच्च उपज वाली, कांटों से रहित लाल किस्म है, जिसे शुद्ध रेखा चयन विधि द्वारा विकसित किया गया है। इसकी संभावित उपज 16–20 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है, जो पारंपरिक स्थानीय सिंघाड़े (Water Chestnut) की किस्मों की तुलना में (जो केवल 10–12 टन प्रति हेक्टेयर उपज देती हैं) काफी अधिक है।

स्पिनलेस किस्में (हरा और लाल): इन सिंघाड़े (Water Chestnut) की किस्मों में कांटे कम होते हैं, जिससे उनकी कटाई और प्रसंस्करण अधिक सरल हो जाता है। 'ग्रीन स्पाइनलेस' किस्म ने आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र में सर्वाधिक उपज (12.24 टन प्रति हेक्टेयर) देने का प्रदर्शन किया है।

अन्य किस्में: सिंघाड़े की कई किस्में उपलब्ध हैं, जिनमें प्रमुख नाम हैं: लाल गठुआ, लाल चिकनी गुलरी, हरीरा गठुआ, कटीला, शारदा, भगवती, गोदावरी, हरीरा और गुलरा आदि। इनमें से कुछ किस्में जल्दी पकने वाली होती हैं, जैसे हरीरा गठुआ, लाल गठुआ, कटीला और लाल चिकनी गुलरी, जबकि कुछ किस्में देर से पकने वाली होती हैं, जिनमें करिया हरीरा, गुलरा हरीरा और गपाचा प्रमुख हैं।

स्वर्ण लोहित

स्पिनलेस किस्में (हरा और लाल)

हरीरा गठुआ

ISSN: 3049-2211

सिंघाड़े की बुवाई का समय और बीज दर

बुवाई का समय: सिंघाड़े की बुवाई का सबसे उपयुक्त समय जून से जुलाई के बीच होता है, जब मानसून की शुरुआत के साथ जल उपलब्धता सुनिश्चित हो जाती है। इस अवधि में छोटे तालाबों या उथले खेतों में बीज डाले जाते हैं। आमतौर पर बुवाई जून-जुलाई में शुरू की जाती है और फसल लगभग छह महीनों में परिपक्व होकर तैयार हो जाती है।

बीज की मात्रा: सिंघाड़े (Water Chestnut) की बुवाई के लिए प्रति हेक्टेयर लगभग 80-100 किलोग्राम सूखे फल (बीज) की मात्रा उपयुक्त मानी जाती है।

सिंघाड़े की बुवाई का तरीका

सिंघाड़े (Water Chestnut) की खेती सामान्यतः परिपक्व बीजों (नट्स) या नर्सरी में तैयार किए गए पौधों की रोपाई द्वारा की जाती है। बीज विधि में, नट्स को पानी से भरे कंटेनरों में अंकुरित किया जाता है। अंकुरण के बाद, पौधों को तालाब या खेत में प्रत्यारोपित किया जाता है, आदर्श रूप से मानसून समाप्त होने के बाद। रोपाई के समय पौधों के बीच 1-2 फीट की दूरी बनाए रखना आवश्यक होता है।

सिंघाड़े में खाद और उर्वरक

सिंघाड़े (Water Chestnut) की बेहतर वृद्धि, विशेषकर उसके वनस्पति विकास चरण में, जैविक खाद और उर्वरकों से अच्छी तरह प्रोत्साहित होती है। इसके लिए लगभग 8 टन प्रति हेक्टेयर की दर से तेल खली, पोल्ट्री खाद और कंपोस्ट जैसे जैविक इनपुट्स का उपयोग करना लाभकारी माना जाता है।

सिंघाड़े के स्वस्थ विकास के लिए फास्फोरस और पोटेशियम की पर्याप्त मात्रा अत्यंत आवश्यक होती है। सामान्यतः प्रति हेक्टेयर 30–40 किलोग्राम यूरिया, 300 किलोग्राम सुपरफॉस्फेट और 60 किलोग्राम पोटाश का उपयोग किया जाता है।

सिंघाड़े में सिंचाई प्रबंधन

सिंघाड़े की खेती में जल प्रबंधन एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। चूंकि यह एक जल में उगाई जाने वाली फसल है, इसलिए खेत या तालाब में उपयुक्त जल स्तर बनाए रखना अनिवार्य होता है। बेहतर वृद्धि और उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए पानी की गहराई आमतौर पर 1 से 2 मीटर के बीच होनी चाहिए। उचित सिंचाई व्यवस्था से फसल की गुणवत्ता और उपज में उल्लेखनीय सुधार हो सकता है।

खेती योग्य क्षेत्रों में सिंघाड़े के लिए 30 से 45 सेंटीमीटर की पानी की गहराई को उपयुक्त माना जाता है। रोपाई आमतौर पर जुलाई में मानसून के समय की जाती है, लेकिन यदि वर्षा कम हो, तो अतिरिक्त सिंचाई देना आवश्यक हो सकता है। फसल की अच्छी वृद्धि के लिए सामान्यतः दो से तीन बार सिंचाई की सलाह दी जाती है।

सिंघाड़े के बाग में रोग नियंत्रण

सिंघाड़े में रोग प्रबंधन के अंतर्गत सड़न, पत्तियों पर धब्बे और पीलेपन जैसी सामान्य समस्याओं से बचाव और उनका उपचार शामिल होता है। रोकथाम के लिए बगीचे को ढंकना और साफ-सफाई जैसी सांस्कृतिक विधियों को अपनाना बेहद आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, जैविक या रासायनिक नियंत्रण उपाय भी अपनाए जा सकते हैं, हालांकि इन्हें पर्यावरणीय प्रभाव को ध्यान में रखते हुए सावधानी से उपयोग करना चाहिए। सिंघाड़े (Water Chestnut) के प्रमुख रोग और उनके नियंत्रण के उपाय निम्नलिखित हैं:

सड़न: यह समस्या कई कारणों से उत्पन्न हो सकती है और अक्सर फफूंद जनित रोगों के प्रसार को रोकने के लिए उचित जल प्रबंधन और साफ-सफाई द्वारा नियंत्रित की जाती है, विशेष रूप से सिंघाड़े (Water Chestnut) की खेती में।

पत्ती का धब्बा: फफूंदनाशकों का उपयोग, पौधों के चारों ओर पर्याप्त वायु संचरण बनाए रखना, और रोगग्रस्त पत्तियों को हटाना—ये सभी उपाय फफूंदजनित पत्ती धब्बा रोगों के प्रभावी नियंत्रण में सहायक होते हैं।

पत्तियों का पीला पड़ना: यह पौधों में पोषक तत्वों की कमी या किसी रोग का संकेत हो सकता है। मिट्टी की जांच करके और उपयुक्त उर्वरकों का उपयोग करके पोषक तत्वों की कमी को सुधारा जा सकता है, जबकि रोग की स्थिति में लक्षित उपचार आवश्यक होता है।

फ्यूजेरियम विल्ट: सिंघाड़े (Water Chestnut) में यह एक फंगल रोग होता है, जिसे नियंत्रित करना अक्सर कठिन होता है। इसके प्रबंधन के लिए स्वच्छता बनाए रखना और रोगमुक्त रोपण सामग्री का उपयोग करना प्रमुख निवारक उपाय हैं।

शीथ ब्लाइट: यह एक और फंगल रोग है जिसे पौधों के चारों ओर वायु परिसंचरण को बेहतर बनाकर, रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करके और आवश्यक होने पर उपयुक्त फफूंदनाशी का प्रयोग करके प्रभावी ढंग से प्रबंधित किया जा सकता है।

ISSN: 3049-2211

ब्लास्ट: यह एक रोग है जो पौधे की पत्तियों और तनों को प्रभावित करता है। इस पर नियंत्रण के लिए जल स्तर का उचित प्रबंधन आवश्यक है, साथ ही ज़रूरत पड़ने पर फफूंदनाशी का उपयोग ब्लास्ट रोग को नियंत्रित करने में सहायक हो सकता है।

ककड़ी मोजेक वायरस: यह एक वायरल रोग है जो विभिन्न लक्षण उत्पन्न कर सकता है और आमतौर पर कीट वाहकों द्वारा फैलता है। इसके प्रबंधन के लिए, कीट नियंत्रण हेतु कीटनाशकों का उपयोग और रोग-मुक्त रोपण सामग्री का प्रयोग करना प्रमुख रणनीतियाँ हैं।

सिंघाड़े में कीट नियंत्रण

सिंघाड़े (Water Chestnut) के बागान विभिन्न कीटों से प्रभावित हो सकते हैं, जैसे एफिड्स, बीटल, स्पाइडर माइट्स, लीफ माइनर्स और स्लग। इनकी रोकथाम के लिए जैविक नियंत्रण एजेंट (जैसे लीफ बीटल *Galerucella birmanica*), हाथों से कीटों को हटाना, तथा कीटनाशक या अन्य रासायनिक उपायों का उपयोग किया जाता है। सिंघाड़े के प्रमुख कीटों और उनके नियंत्रण के उपाय इस प्रकार हैं:

एफिड्स: ये रस चूसने वाले कीट सिंघाड़े (Water Chestnut) की पत्तियों में पीलेपन और मुड़ने जैसी समस्याएं उत्पन्न कर सकते हैं। इनके नियंत्रण के लिए लाभकारी कीट जैसे लेडीबग को प्रोत्साहित करना, कीटनाशक साबुन का प्रयोग करना या पानी की तेज बौछार से कीटों को हटाना प्रभावी उपाय हैं।

भृंग: सिंघाड़ा (Water Chestnut) भृंगों, जैसे सिंघाड़ा भृंग और नीली भृंग, के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है, जो पत्तियों को नुकसान पहुँचाकर उन्हें झड़ने का कारण बन सकते हैं। इनके नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है या गैलेरुसेला बिरमानिका जैसे जैविक नियंत्रण एजेंटों का उपयोग प्रभावी होता है।

मकड़ी के कण: ये छोटे कीट सिंघाड़े (Water Chestnut) की पत्तियों पर धब्बे या चित्तियाँ बना सकते हैं। ये आमतौर पर शुष्क वातावरण में तेजी से फैलते हैं, इसलिए नमी बनाए रखना इनके नियंत्रण में सहायक होता है। इसके अलावा, कीटनाशक साबुन या माइटसाइड का उपयोग करके भी इन्हें प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

लीफ माइनर्स: ये लार्वा पत्तियों की ऊपरी और निचली सतहों के बीच सुरंग बनाते हैं, जिससे पत्तियों पर विशिष्ट सफेद या भूरे रंग के निशान दिखाई देते हैं। हालांकि ये दृश्य रूप से अप्रिय हो सकते हैं, लेकिन आमतौर पर ये गंभीर क्षति नहीं पहुंचाते। इनका नियंत्रण चिपचिपे जाल के उपयोग या संक्रमित पत्तियों को हटाकर प्रभावी रूप से किया जा सकता है।

घोंघे और घोंघे: ये मोलस्क, विशेष रूप से गीले और नम वातावरण में, सिंघाड़े (Water Chestnut) के पत्तों और तनों को चबाकर नुकसान पहुंचा सकते हैं। इनसे बचाव के लिए हाथ से निकालना, तांबे की पट्टी जैसे भौतिक अवरोध लगाना या स्लग आकर्षित करने वाले चारे का उपयोग करना प्रभावी नियंत्रण उपायों में शामिल हैं।

सिंघाड़े के फलों की तुड़ाई

सिंघाड़ा की कटाई आमतौर पर गर्मियों के अंत से लेकर शरद ऋतु तक की जाती है। इस प्रक्रिया में तालाबों या अन्य जल स्रोतों में उगने वाले पौधों से फलों को हाथों से तोड़कर या जल के भीतर से इकट्ठा किया जाता है। सिंघाड़े की तुड़ाई मुख्यतः सितम्बर-अक्टूबर से शुरू होती है और यह अवधि दिसम्बर-जनवरी तक चलती है।

तुड़ाई इस बात पर निर्भर करती है कि फल पूरी तरह परिपक्व हुआ है या नहीं—इसके आकार, गूदे की कोमलता और रंग-रूप से इसकी पहचान की जाती है। कटाई का समय अलग-अलग किस्मों के अनुसार भिन्न हो सकता है। सिंघाड़े (Water Chestnut) की किस्मों के आधार पर कटाई की जानकारी इस प्रकार है:

जल्दी पकने वाली प्रजातियों: पहली तुड़ाई आमतौर पर अक्टूबर के पहले सप्ताह में शुरू होती है, जबकि अंतिम तुड़ाई 20 से 30 दिसंबर के बीच पूरी की जाती है।

देर से पकने वाली प्रजातियों: पहली तुड़ाई सामान्यतः नवम्बर के पहले सप्ताह में शुरू होती है, जबकि अंतिम तुड़ाई जनवरी के अंतिम सप्ताह तक पूरी की जाती है।

कुल तुड़ाई: सिंघाड़ा (Water Chestnut) की फसल की तुड़ाई आमतौर पर 4 से 8 चरणों में की जाती है, जो उसकी परिपक्वता और किस्म पर निर्भर करती है।

सिंघाड़े के फलों की तुड़ाई

सिंघाड़े की बागवानी

सिंघाड़े के बाग से पैदावार

सिंघाड़े (Water Chestnut) की फसल, जिसे जल-फल भी कहा जाता है, मुख्य रूप से तालाबों या जलाशयों में उगाई जाती है। इसकी हरे फलों की उपज लगभग 80 से 100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है, जबकि सूखे बीजों की उपज 17 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिलती है। यदि खेत या तालाब उपजाऊ हो और फसल की देखभाल सही तरीके से की जाए, तो यह उपज बढ़कर 100 से 120 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक भी पहुंच सकती है।

ISSN: 3049-2211

लीफ स्पॉट रोगः कारण और नियंत्रण

डॉ. एस.जी. घुगल[1], डॉ. साक्षी सिंह[2]

[1]कीटशास्त्र विभाग, [2]सहायक प्राध्यापक, पौधरोग विज्ञान विभाग,

जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय,

पवारखेड़ा, नर्मदापुरम, मध्य प्रदेश

लीफ स्पॉट रोग एक सामान्य लेकिन गंभीर रोग है जो विभिन्न फसलों में पत्तियों को प्रभावित कर उत्पादन में गिरावट ला सकता है। यह रोग मुख्यतः कवक, बैक्टीरिया और वायरस से उत्पन्न होता है तथा अनुकूल मौसम इसकी वृद्धि को तेज करता है। रोग की समय पर पहचान, सतर्कता और उपयुक्त जैविक व रासायनिक नियंत्रण उपायों से इसके प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन और अच्छी कृषि पद्धतियाँ अपनाकर लीफ स्पॉट को नियंत्रित किया जा सकता है।

परिचय

लीफ स्पॉट रोग (पत्ती पर धब्बों का रोग) फसलों की एक सामान्य लेकिन गंभीर समस्या है, जो फसलों की पत्तियों पर विभिन्न आकार, रंग और बनावट के धब्बों के रूप में दिखाई देती है। यह रोग न केवल फसल की सौंदर्यता को प्रभावित करता है, बल्कि प्रकाश संश्लेषण को बाधित करके उत्पादन में भी भारी गिरावट ला सकता है। यह रोग कई प्रकार के रोगजनकों जैसे कि कवक (फफूंद), बैक्टीरिया और वायरस के कारण उत्पन्न हो सकता है। भारत में विशेषकर दलहनी, तिलहनी, फल एवं सब्जियों की फसलों में यह रोग व्यापक रूप से पाया जाता है।

लीफ स्पॉट रोग के प्रमुख कारण

कवकीय कारण

- सबसे आम रोगजनक Cercospora, Alternaria, Septoria, Colletotrichum, आदि हैं।
- ये फफूंद बीज, मिट्टी, अवशेष या वायु के माध्यम से फैलते हैं।

बैक्टीरियल कारण

- Xanthomonas और Pseudomonas जैसी जीवाणु प्रजातियां पत्तियों पर जलस्निग्ध धब्बे बनाती हैं जो बाद में सूखकर काले पड़ जाते हैं।

वायरल कारण

- कई वायरस जैसे टोबाको मोजैक वायरस भी पत्तियों पर विचित्र धब्बे और रंग बदलने की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

ISSN: 3049-2211

अनुकूल मौसम

- उच्च आर्द्रता, मध्यम तापमान (20-28° से.), पत्तियों पर जल-जमा होना और कमजोर हवा परिसंचरण इस रोग को प्रोत्साहित करते हैं।

अप्राकृतिक कृषि विधियाँ

- अधिक सिंचाई, अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक, तथा असंतुलित पोषण प्रबंधन भी इस रोग के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं।

लक्षण

- गोलाकार, अंडाकार या अनियमित आकार के भूरे, काले, पीले या लाल धब्बे।
- धब्बों का केंद्र अक्सर सूखा और मृत होता है।
- रोगग्रस्त पत्तियाँ जल्दी पीली पड़कर गिर सकती हैं।
- कई बार पत्तियों में छिद्र हो जाते हैं।

नियंत्रण के उपाय

1. कृषि प्रबंधन

- रोगमुक्त बीज और प्रमाणित रोपण सामग्री का प्रयोग करें।
- फसल चक्र अपनाएं - समान प्रजाति की फसलों की बार-बार खेती से बचें।
- खेत में उचित दूरी और वायु संचरण सुनिश्चित करें।
- रोगग्रस्त पौध भागों को काटकर जला दें या नष्ट करें।

2. जैविक नियंत्रण

- Trichoderma harzianum, Pseudomonas fluorescens जैसे जैव नियंत्रण एजेंट फफूंदनाशक के रूप में प्रभावी हैं।
- नीम तेल (1-2 प्रतिशत) का छिड़काव लाभकारी हो सकता है।

3. रासायनिक नियंत्रण

- Mancozeb 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी या Chlorothalonil का 0.2 प्रतिशत छिड़काव।
- Copper oxychloride भी फफूंदी जनित लीफ स्पॉट के नियंत्रण में उपयोगी है।
- छिड़काव 10-15 दिन के अंतराल पर दोहराएं।

4. प्रतिरोधी किस्मों का चयन

- विभिन्न फसलों में रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन और उपयोग करें।

सावधानियाँ

- फफूंदनाशकों का विवेकपूर्ण प्रयोग करें।
- कीट एवं रोगों की समय पर निगरानी रखें।
- छिड़काव करते समय सुरक्षा उपकरणों का प्रयोग अनिवार्य करें।

निष्कर्ष

लीफ स्पॉट रोग की रोकथाम और नियंत्रण हेतु एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है जिसमें रोग की प्रारंभिक पहचान, कृषि पद्धतियों का सुधार, जैविक एजेंटों का उपयोग, और आवश्यकतानुसार रासायनिक उपाय सम्मिलित हों। जलवायु परिवर्तन और रसायनों के प्रति बढ़ती जागरूकता के इस युग में किसानों को चाहिए कि वे जैविक और पारिस्थितिक दृष्टि से अनुकूल उपायों को प्राथमिकता दें ताकि फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता दोनों को बनाए रखा जा सके। लीफ स्पॉट जैसे रोगों पर नियंत्रण न केवल फसल को बचाता है बल्कि समग्र कृषि प्रणाली को भी स्थायित्व प्रदान करता है।

ISSN: 3049-2211

नीलगिरी की तकनीकी जानकारी एवं उपयोग व आय का स्त्रोत

विशाल वर्मा[1] , डॉ. जी. एस. गाथिये[2]

[1]कनिष्ठ अनुसंधान अध्येयता, आनुवंशिकी और पादप प्रजनन प्रभाग उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान (भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय भारत सरकार), जबलपुर, मध्यप्रदेश

[2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, ए आर. ए. के. कृषि महाविद्यालयए , राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर, सीहोर, मध्यप्रदेश

आम जानकारी

नीलगिरी मूल रूप से ऑस्ट्रेलिया का पौधा है यह तेजी से बढ़ने वाला, सीधे तने व हल्के फैलाव वाला पौधा होता है। इसका इस्तेमाल इमारती लकड़ी, फर्मिचर, पेटिया, लुगदी, इत्र, वैदिक दवाईयाँ, साबुन, ईधन, पार्टिकल बोर्ड वगैरह बनाने मे किया जाता है। नीलगिरी उगाने वाले मुख्य प्रांत आंध्र प्रदेश, बिहार, गोआ, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडू, केरल, पश्चिम बंगाल, और कर्नाटक है।

कृषि वानिकी के तहत किसान अपने खेतो मे नीलगिरी लगा कर ईधन, लकड़ी हासिल करने के साथ डबल कमाई कर सकते है। नीलगिरी के बीज या पोधे सरकारी नर्सरी, कृषि विश्वविद्यालय, राज्य वन अनुसंधान, जबलपुर या उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान जबलपुर से लिए जा सकते है। नीलगिरी की पौध को खेत मे बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है । पेड़ का फैलाव ऊंचा व हल्का होने के कारण इस की छाया बहुत कम होती है। पेड़ को काट देने पर दोबारा कल्ले निकल आते है, जिससे 5 साल मे नया पेड़ तैयार हो जाता है। इस पेड़ को जानवर नहीं खाते है, जिससे इस की सुरक्षा पर ज्यादा ध्यान नहीं होता है। ज्यादा से ज्यादा पेड़ लगाकर पर्यावरण संतुलन बनाने मे मदद होती है। नीलगिरी के पेड़ पर रहने वाले पक्षी खेती के दुश्मन कीट, पतंगो, चूहो, वगैरह को खा कर फसल की रक्षा करते है। खेत की मेड़ों पर लगाये गए नीलगिरी के पोधों को अलग से सिंचाई व खाद देने की जरूरत नहीं होती है। क्योकि खेतो को दिया गया पानी व खाद नीलगिरी को अपने आप मिल जाता है।

नीलगिरी के लिए उपयुक्त जलवायु-

नीलगिरी 0-47° तापमान तक व 20 से.मी. से 125 से.मी. तक सालाना बारिश वाले स्थानो मे उग सकता है एवं बीज की बुआई के समय 25-35° तापमान की आवश्यकता होती है।

मिट्टी-

इसके बढ़िया विकास के लिए अच्छे जल निकास वाली मिट्टी की जरूरत होती है व जिसका पी० एच० मान 6.5 से 7.5 वाली मिट्टी

ISSN: 3049-2211

नीलगिरी लगाने के लिए अच्छी होती है हल्के पानी भराव वाले इलाको मे भी इसे उगाया जा सकता है।

लोकप्रिय किस्में- एपी 413,एपी 07,एपी 319,एपी 403,निलगिरी कैमलडुलैंसिस, एफ. आर. आई. 6, एफ. आर. आई. 4, निलगिरी ग्लोब्युल्स, निलगिरी सिट्रियोडोरा।

भूमि की तैयारी-

निलगिरी की खेती मुख्य रूप से उद्योगिक कार्यो के लिए की जाती है। व्यापारिक खेती के जमीन में से नदीन और खूटिया निकाल दे। जमीन को भुरभुरा करने के लिए 2-3 बार जुताई करे। बिजाई के लिए 30×30×30 या 45×45×45 के गड्डे खोदे।

बीज बुआई का समय-

इसकी बिजाई का समय जून से अक्टुबर तक की जा सकती है।

पौधे से पौधे के बीच दुरी-

ज्यादा घनत्व के साथ बिजाई 1.5×1.5 मीटर की दुरी पर (लगभग 1690 पौधे प्रति एकड़) या 2×2 मीटर दुरी पर (लगभग 1200 पौधे प्रति एकड़) बिजाई करे। शुरुआत में अंतर-फसले भी उगाई जा सकती है। अंतर फसलो के समय दुरी 4×2 मीटर (लगभग 600) या 6×1.5 या 8×1 मीटर की दुरी रखे। हल्दी और अदरक जैसी फसले या चिकित्सक पौधे अंतर-फसलो के रूप में लगाये जा सकते है। 2×2 मीटर की दुरी ज्यादातर प्रयोग किया जाता है।

बीज की मात्रा- 1.5×1.5 मीटर दुरी पर बिजाई करने के साथ लगभग 1690 पौधे प्रति एकड़ में प्राप्त किये जा सकते है, जबकि 2×2 मीटर की दुरी के साथ लगभग 1200 पौधे एकड़ में प्राप्त किये जा सकते है।

पौध रोपाई-

- निलगिरी के पौधे खेत की मेड़ो पर 2 मीटर की दुरी पर लगाने चाहिए।
- मेड़ो पर पौध लगाने की दिशा पूर्व पश्चिम रखे ताकि सर्दियों में रबी की फसल पर लगातार छाया न पड़े।
- अगर खेत के अन्दर ये पौधे लगा रहे है तो बंजर या कम उपजाऊ वाली जमीनी पर निलगिरी की सघन रोपाई 2-2.5 मीटर के अंतर पर करे।
- इसकी लाइनो के बीच 2 साल तक खेती की जा सकती है इससे कम उपजाऊ जमीन पर भी अच्छा फायदा मिलाता है।

खाद की मात्रा-

बिजाई से 3-5 महीने बाद नये पौधे मुख्य खेत में लगाये जाते है। नये पौधे गड्डों में मानसून के समय नीम के तत्वों के साथ-साथ फास्फेट 50 ग्राम और गन्डोया खाद 250 ग्राम प्रति गड्डे में डाले। नीम के तत्व पौधो को दीमक से बचाते है। पहले साल NPK की 50 ग्राम मात्रा डाले। दुसरे साल 17:17:17/50 ग्राम प्रति पौधे को डाले।

खरपतवार नियंत्रण-

शुरूआती समय में खेत को नदीन-मुक्त रखने के लिए दो से तीन हाथो से गुड़ाई की जरुरत होती है।

सिंचाई की आवश्यकता-

मुख्य खेत में पनीरी लगाने के तुरंत बाद सिंचाई करे। मानसून में सिंचाई की जरुरत नहीं होती, पर अगर मानसून में देरी हो जाएँ या बढ़िया तरीके के साथ ना हो तो सुरक्षित सिंचाई करे। निलगिरी सूखे को सहन करने वाली फसल है, पर उचित पैदावार के लिए पुरे विकास वाले समय में कुल 25 सिंचाईयो की जरुरत होती है। सिंचाई की ज्यादातर जरुरत गर्मियों में और काफी हद तक सर्दियों में होती है।

पौधे की देखभाल-

1. कीटों की रोकथाम एवं रोग प्रबंध-

- **दीमक-** नये पौधे के लिए दीमक बहुत ही गंभीर कीट है, जो फसल को काफी हद तक नुकसान पहुँचाता है। फसल को दीमक से बचाने के लिए निबीसाइड 2 मि. ली. को प्रति लीटर पानी में मिला कर स्प्रे करे।
- **गांठे बनना-** इसके साथ पत्ते सूखने शुरू हो जाते है, पौधे की बढवार रुक जाती है और तने की बनतर बी खराब हो जाती है द्य इस बीमारी के नुकसान हुए पत्तो का विकास रुक जाता है। अगर इसका हमला दिखाई दे तो पौधे को हटा दे। हमेशा इसकी प्रतिरोधी किस्मे ही इस्तेमाल करे।
- **टहनियो का कोढ़ रोग-** अगर इसका हमला दिखाई दे तो बोरडीओकस का घोल जड़ो वाले हिस्सों में डाले।

फसल की कटाई-

टिशू कल्चर के द्वारा बिजाई से 5 साल में 50 से 76 मि. ली. तन पैदावार प्राप्त की जा सकती है, जबकि मूल बिजाई से 30 से 50 मि. ली. तन पैदावार प्राप्त की जा सकती है। फसल की पैदावार खेत प्रबंध, पौधे का घनत्व, जलवायु आदि के अनुसार कम-ज्यादा भी हो सकती है।

पैदावार और मुनाफा-

कृषि वानिकी तकनीक में 1 हैक्टेयर खेत में 500 निलगिरी पौधे लगाने पर लागत और फायदा, उस में लगाई फसलो के मुताबिक तय होता है। खेत की मेड़ो व खेत के अन्दर ज्यादा निलगिरी लगाए, क्योकि गेहूँ, धान, गन्ना और भी कृषि वानिकी अंतर्गत आने वाली फसलो के साथ निलगिरी लगाने पर अलग से उपज मिल जाती है। आमतोर पर 8 साल बाद निलगिरी के पेड़ को बेचने से 300 से 500 रूपये प्रति पेड़ की आमदनी होती है।

निलगिरी से तेल, शहद वगैरह जैसी उत्पाद भी मिलते है। 5 साल पुराना निलगिरी का एक पेड़ तकरीबन 2 क्विंटल ईधन देता है जो 1 परिवार के 1 महीने तक के लिए खाना बनाने के काम आता है। इसप्रकार यदि हम अपने खेत में 12 निलगिरी के पेड़ लगाते है तो हमें 12 महीने निर्बाध रूप से घरेलू उपयोग के लिए ईधन की आपूर्ति होगी साथ ही हमें इसकी पत्तियों से जैविक खाद प्राप्त होगा जो की बाजार से प्राप्त होने वाले रासायनिक खाद की तुलना में ज्यादा गुण कारी और लाभप्रद होगा इस तरह से किसान की आजीविका को बढ़ाने में मदद करेगा इस तरह निलगिरी के बहुउदेशीय गुणों को इस्तेमाल कर किसान अपनी आर्थिक स्थिति को सुद्रण कर सकता है।

दक्षिण भारतीय राज्यों में वृहद स्तर पर वहा के किसान निलगिरी केजुरयाना का व्यापारिक रूप से वृक्षा रोपण नारियल और केले की खेती के साथ करते है और वानिकी और कृषि एक साथ कर कृषिवनिक का अनुपम मोडल प्रस्तुत करते है और इससे प्राप्त होने वाला मुनाफा लाखों में होता है इस लिए दक्षिण भारतीय किसानो की आर्थिक स्थिति देश के अन्य राज्यों के किसानो की तुलना में मजबूत होती है।

रेफरेंस-

1.वन अनुसंधान संसथान (डीम्ड विश्वविद्यालय) देहरादून (UK)

2. डॉ. यशवंत सिंह परमार हॉर्टिकल्चर एवं फॉरेस्ट्री विश्वविद्यालय, नैनी, सोलन (HP)

3.भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार।

4. फारेस्ट विभाग

ISSN: 3049-2211

बिहार में मत्स्य पालन के लिए सरकारी योजनाएँ और उनका प्रभाव

नवीन कुमार

छात्र स्नातकोत्तरए मात्स्यकी महाविद्यालय किशनगंज (बिहार)

परिचय

बिहार, भारत का एक प्रमुख अंतर्देशीय राज्य है, जो नदियों, आर्द्रभूमियों, तालाबों, और जलाशयों से समृद्ध है। यहाँ गंगा, गंडक, कोसी, बागमती जैसी नदियाँ मत्स्य संसाधनों के लिए उपजाऊ आधार प्रदान करती हैं। राज्य में लाखों परिवार मत्स्य पालन से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हैं। मछली पालन न केवल आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है, बल्कि बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी गति प्रदान करता है।

राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा समय-समय पर मत्स्य पालन को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ प्रारंभ की गई हैं, जिनका उद्देश्य उत्पादन, रोजगार और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

प्रमुख सरकारी योजनाएँ

बिहार भारत के प्रमुख अंतर्देशीय मत्स्य पालन राज्यों में से एक है। मछली उत्पादन बढ़ाने हेतु बिहार सरकार ने कई योजनाएँ चलाई हैं, जिनका उद्देश्य है — मत्स्य किसानों की आय बढ़ाना, बीज उत्पादन की गुणवत्ता सुधारना, और मत्स्य पालन को वैज्ञानिक ढंग से प्रोत्साहित करना।

1. बिहार मछली बीज प्रमाणीकरण योजना

लॉन्च वर्ष: 2022

उद्देश्य:

- गुणवत्तापूर्ण मछली बीज का उत्पादन और वितरण
- निजी/सरकारी हैचरी को प्रमाणित कर विश्वसनीय बनाना
- मछली बीज की पहचान, लेबलिंग और ट्रेसबिलिटी की सुविधा देना

लाभ:

- मछली मृत्यु दर में कमी
- उत्पादन क्षमता में वृद्धि
- किसानों का भरोसा और आमदनी बढ़ना

विशेषता	विवरण
लाभार्थी	सभी निजी व सरकारी मत्स्य हैचरी संचालक
प्रमाणीकरण प्राधिकारी	मत्स्य निदेशालय, बिहार
प्रमाणन स्तर	प्रारंभिक (Provisional) और स्थायी (Permanent)
आवेदन प्रक्रिया	ऑनलाइन / ऑफलाइन दोनों माध्यमों से
मानक मूल्यांकन	जल गुणवत्ता, ब्रूडस्टॉक की गुणवत्ता, इनपुट

ISSN: 3049-2211

विशेषता	विवरण
	ट्रेसबिलिटी, रिकॉर्ड में पारदर्शिता आदि के आधार पर

2. मत्स्य पालकों को अनुदान पर उपकरण वितरण योजना

उद्देश्य:

- छोटे मत्स्य किसानों को जाल, ड्रम, नाव, बक्सा आदि उपकरण देना
- वैज्ञानिक तरीकों से मत्स्य पालन को बढ़ावा देना

लाभ:

- कम लागत में उत्पादन
- श्रम बचत और दक्षता बढ़ना

प्रमुख उपकरण जो अनुदान पर दिए जाते हैं:

उपकरण का नाम	उद्देश्य
जाल (Fishing Nets)	मछली पकड़ने के लिए
बक्सा (Ice Box)	मछली के ताजगी संरक्षण के लिए
ड्रम	बीज/मछली को सुरक्षित रखने या परिवहन हेतु
एरिएटर (Aerator)	तालाब में ऑक्सीजन स्तर बनाए रखने के लिए
नाव	बड़े तालाबों या जलाशयों में संचालन हेतु
पॉलिथीन शीट	बीज नर्सरी या जल संरक्षण के लिए
वॉटर टेस्टिंग किट	पानी की गुणवत्ता जांचने हेतु

3. जीवित मछली परिवहन योजना (फिश ट्रांसपोर्ट यूनिट)

उद्देश्य:

- मछलियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जीवित पहुँचाना
- मत्स्य बिक्री में ताजगी बनाए रखना

लाभ:

- बाजार मूल्य में वृद्धि
- न्यूनतम नुकसान

योजना के तहत मिलने वाली सुविधाएँ:

संसाधन	विवरण
फिश ट्रांसपोर्ट यूनिट (FTU)	ट्रक/ऑटो/ठेला पर बना विशेष बॉक्स जिसमें पानी, ऑक्सीजन व तापमान नियंत्रण व्यवस्था होती है
ऑक्सीजन सिलेंडर या एरिएटर	मछली को जीवित रखने हेतु पानी में ऑक्सीजन बनाए रखने के लिए
इंसुलेटेड कंटेनर	पानी के तापमान को नियंत्रित करने के लिए
बायो-फिल्टर युक्त यूनिट	जल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए (कुछ यूनिट में)

4. मछली पालन हेतु तलाब निर्माण/जीर्णोद्धार योजना

अनुदान: ₹1.20 लाख तक प्रति हेक्टेयर

उद्देश्य:

- नए तालाब बनाना या पुराने का पुनरुद्धार करना
- भूमि उपयोग की दक्षता बढ़ाना

लाभ:

- ग्रामीण बेरोजगारी में कमी
- जल संरक्षण के साथ उत्पादन में वृद्धि

योजना के प्रमुख घटक:

घटक	विवरण
तालाब निर्माण	नये मत्स्य तालाब की खुदाई (1 हेक्टेयर तक)
तालाब जीर्णोद्धार	पुराने या खराब तालाब की मरम्मत, गहरीकरण, सड़/काई की सफाई
पानी रोकने की व्यवस्था	इनलेट-आउटलेट, बाँध मजबूती, पानी भराव नियंत्रण
सहायक संरचनाएँ	तालाब किनारे मछली पकड़ने का प्लेटफॉर्म, बाड़, जल गुणवत्ता परीक्षण

5. मत्स्य बीमा योजना

लाभ:

- प्राकृतिक आपदाओं, रोग या अन्य कारणों से मछली मृत्यु होने पर बीमा मुआवजा

उद्देश्य:

- मत्स्य किसानों के जोखिम को कम करना
- उन्हें आर्थिक सुरक्षा देना

बीमा किन चीज़ों का होता है?

बीमित वस्तु	बीमा सुरक्षा का प्रकार
विकसित मछली (adult fish)	प्राकृतिक आपदा, रोग, ऑक्सीजन की कमी, विषाक्त जल, तापमान परिवर्तन आदि से मृत्यु
बीज (Fish Seed)	मछली हैचरी या नर्सरी में रोग या खराब जल गुणवत्ता से होने वाली मृत्यु
मछली पालन तालाब	कुछ मामलों में संरचना को भी आंशिक बीमा मिल सकता है

ISSN: 3049-2211

बीमित वस्तु	बीमा सुरक्षा का प्रकार
श्रीमान/मालिक का जीवन बीमा (PMMSY में)	दुर्घटना से मृत्यु या विकलांगता की स्थिति में व्यक्तिगत लाभ

बीमा कवरेज का उदाहरण:

प्रकार	बीमा राशि/हेक्टेयर (औसतन)	किसान द्वारा भुगतान	सरकार द्वारा सब्सिडी
सामान्य मत्स्य पालन	₹1.5 लाख/हेक्टेयर तक	20%	80%
बीज उत्पादन (हैचरी)	₹1 लाख/यूनिट तक	25%	75%
जीवन बीमा (व्यक्ति)	₹2 लाख तक (PMMSY)	न्यूनतम प्रीमियम	अधिकांश राशि केंद्र/राज्य सरकार वहन करती है

6. मत्स्य कृषक क्रेडिट कार्ड (KCC)

लाभ:

- कार्यशील पूंजी के लिए बैंक ऋण
- ब्याज में सब्सिडी
- आसान पुनर्भुगतान विकल्प

विषय	विवरण
ऋण की राशि	₹1.6 लाख तक (बिना जमानत) — ज़रूरत के अनुसार ₹3 लाख या अधिक तक भी
ब्याज दर	7% वार्षिक (सरकार की सब्सिडी से घटकर 4% तक हो सकता है)
ऋण अवधि	5 वर्ष तक (वार्षिक नवीनीकरण के साथ)
भुगतान विधि	किश्तों में या एकमुश्त, संचालन चक्र के अनुसार
बीमा	दुर्घटना बीमा, ऋण बीमा और फसल (मछली) बीमा का लाभ भी मिलता है

7. आरोग्य मत्स्य योजना

उद्देश्य:

- मछलियों में रोग प्रबंधन
- जल गुणवत्ता की निगरानी

लाभ:

- उत्पादन में स्थिरता
- रोग से होने वाले नुकसान की रोकथाम

योजना के अंतर्गत प्रमुख घटक:

सेवा	विवरण
जल गुणवत्ता परीक्षण	पीएच, ऑक्सीजन, तापमान, अमोनिया, नाइट्रेट आदि की जांच
रोग परीक्षण प्रयोगशाला	फंगस, बैक्टीरिया, वायरस संक्रमण की जांच
मोबाइल फिश हेल्थ यूनिट	गाँवों में जाकर मौके पर जांच और इलाज की सुविधा
दवा और उपचार किट वितरण	आवश्यक दवाइयाँ, लाइम, पोटाश, ब्लू वाइटल आदि
तालाब से नमूना संग्रह	मछली और पानी के नमूनों का नियमित निरीक्षण

आरोग्य मत्स्य योजना बिहार सरकार की एक **उन्नत और वैज्ञानिक पहल** है, जिसका उद्देश्य है **मछलियों की स्वास्थ्य रक्षा**, उत्पादन में निरंतरता और **मत्स्य किसानों को आर्थिक नुकसान से बचाना।** यह योजना मत्स्य पालन को **एक सुरक्षित, लाभकारी और टिकाऊ व्यवसाय** के रूप में स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

निष्कर्ष

बिहार में मत्स्य पालन की संभावनाएँ केवल प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा समय-समय पर चलाई गई योजनाओं के माध्यम से व्यवहारिक रूप में भी सामने आ रही हैं। नदियों, आर्द्रभूमियों और तालाबों की भरमार वाले इस राज्य में मत्स्य पालन एक मजबूत ग्रामीण आजीविका और आर्थिक सशक्तिकरण का माध्यम बनकर उभर रहा है। इस क्षेत्र में रोजगार सृजन, पोषण सुरक्षा और आर्थिक विकास के साथ-साथ जल संसाधनों के सतत उपयोग की दृष्टि से भी मत्स्य पालन का अत्यंत महत्व है। वर्तमान में लागू योजनाओं में बिहार मछली बीज प्रमाणीकरण योजना से लेकर आरोग्य मत्स्य योजना तक, प्रत्येक पहल इस क्षेत्र को एक वैज्ञानिक, लाभकारी और आधुनिक व्यवसाय के रूप में रूपांतरित कर रही है। बीज की गुणवत्ता सुनिश्चित करने से लेकर उपकरण, तालाब निर्माण, बीमा और स्वास्थ्य सेवाओं तक की समग्र व्यवस्था राज्य सरकार द्वारा की जा रही है। विशेष रूप से मत्स्य पालकों को अनुदान पर उपकरण योजना, फिश ट्रांसपोर्ट यूनिट, और आरोग्य मत्स्य योजना जैसे नवाचार मत्स्य उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा दोनों को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इसके साथ-साथ मत्स्य कृषक क्रेडिट कार्ड (KCC) जैसी वित्तीय सहायता योजनाएँ छोटे और सीमांत किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बना रही हैं, जिससे वे बिना किसी

बड़ी पूंजी के मछली पालन प्रारंभ कर सकते हैं। वहीं दूसरी ओर मत्स्य बीमा योजना उन्हें आपदाओं और आकस्मिक नुकसान से सुरक्षा प्रदान करती है, जिससे उनके व्यवसाय में स्थिरता बनी रहती है।

इन सभी योजनाओं का समन्वित प्रभाव यह है कि आज बिहार में मछली उत्पादन में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। किसानों की आय में सुधार हो रहा है, और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। यदि इन योजनाओं को और अधिक पारदर्शिता, दक्षता और निगरानी के साथ लागू किया जाए, साथ ही जमीनी स्तर पर प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और बाजार से जोड़ने की व्यवस्था की जाए, तो यह स्पष्ट है कि बिहार भविष्य में आत्मनिर्भर मत्स्य राज्य बन सकता है।इस दिशा में आगे बढ़ते हुए, मत्स्य पालन न केवल एक कृषि सहायक गतिविधि रहेगा, बल्कि यह ग्रामीण जीवनशैली का आधार और बिहार की आर्थिक संरचना का एक मजबूत स्तंभ भी बन सकता है। इन योजनाओं के समुचित कार्यान्वयन से बिहार न केवल अपनी आंतरिक मांग पूरी करेगा, बल्कि अन्य राज्यों को भी मत्स्य उत्पादों की आपूर्ति कर एक मत्स्य उत्पादक राज्य के रूप में अपनी पहचान मजबूत करेगा।

■■■

ISSN: 3049-2211

जलजीविका की नई राह: मत्स्य पालन एवं जलीय कृषि में मैनेज, हैदराबाद की प्रभावी भूमिका

[1]डॉ. रेखा दास, [1]डॉ. शाहजी फंड, [2]श्री अवधूत कदम, [3]डॉ. नित्यसुंदर पाल और [4]डॉ. शिवाजी अरगडे

[1]मैनेज फेलो, कृषि संबद्ध क्षेत्रों में विस्तार केंद्र, मैनेज, हैदराबाद

[1]उप निदेशक, कृषि संबद्ध क्षेत्रों में विस्तार केंद्र, मैनेज, हैदराबाद

[2]प्रमुख, शाश्वत शेती विकास प्रतिष्ठान, पुणे

[3]कन्सल्टन्ट, राष्ट्रीय मत्स्य विकास बोर्ड, हैदराबाद

[4]वरिष्ठ वैज्ञानिक, आईएसीआर-सीआईएफई, मुंबई

राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबंधन संस्थान (मैनेज), हैदराबाद भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अधीन कार्यरत एक प्रमुख स्वायत्त संगठन है, जो कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में प्रशिक्षण, अनुसंधान, विस्तार प्रबंधन और उद्यमिता विकास के माध्यम से ग्रामीण विकास को गति देता है।

मत्स्य पालन और जलीय कृषि जैसे तीव्र गति से विकसित हो रहे क्षेत्रों में, मैनेज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और दूरदर्शी रही है। यह संस्थान न केवल किसानों और मछुआरों को प्रशिक्षित कर रहा है, बल्कि मत्स्य क्षेत्र में उद्यमिता और नवाचार की एक नई पीढ़ी तैयार कर रहा है। मैनेज क्षमता निर्माण, मानव संसाधन विकास और उद्यमिता को दे रहा है नया आयाम।

1. क्षमता निर्माण (Capacity Building)

मैनेज, हैदराबाद द्वारा देशभर में कार्यरत KVKs, NGOs, एक्वा वन सेंटर, मत्स्य विज्ञान महाविद्यालयों के माध्यम से विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं, जिनका उद्देश्य है:

- मछुआरों, मछुआरिनों और युवाओं को आधुनिक जलीय कृषि तकनीकों से परिचित कराना।
- वैज्ञानिक विधियों जैसे बायोफ्लॉक, केज कल्चर, रिसर्क्युलेटिंग एक्वाकल्चर सिस्टम (RAS) आदि पर व्यावहारिक प्रशिक्षण देना।
- जल परीक्षण, रोग प्रबंधन, मछली बीज उत्पादन, चारा प्रबंधन जैसे विषयों पर गहन प्रशिक्षण।

2. मानव संसाधन विकास (Human Resource Development)

मैनेज मत्स्य क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को संगठित, प्रशिक्षित और सशक्त बनाकर उन्हें जलजीव आधारित व्यवसायों हेतु तैयार कर रहा है। इसके अंतर्गत:

- महिलाओं और युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षित किया जा रहा है।
- प्रतिभागियों को सरकारी योजनाओं, सब्सिडी, बाजार संबंधी जानकारी प्रदान की जाती है।
- प्रशिक्षण के साथ-साथ प्रमाणपत्र, यात्रा भत्ता और दैनिक भत्ता प्रदान किया जाता है।

यह पहल ग्राम स्तर पर दक्ष और जागरूक मानव संसाधन तैयार करने की दिशा में मील का पत्थर है।

3. उद्यमिता संवर्धन (Entrepreneurship Promotion)

मैनेज ने मत्स्य पालन क्षेत्र में स्टार्टअप्स और एफएफपीओ (Fish Farmer Producer Organizations) को प्रोत्साहित करने के लिए मत्स्य इनक्यूबेशन सेंटर की स्थापना की है। इसके माध्यम से:

- नवाचार आधारित फिशरीज स्टार्टअप्स को मेंटरशिप, नेटवर्किंग और निवेश की सुविधा मिली है।
- ग्रामीण युवाओं को बिजनेस मॉडल, मार्केटिंग, वैल्यू एडिशन और वित्तीय प्रबंधन की शिक्षा दी जा रही है।
- महिलाओं को मत्स्य प्रसंस्करण, मूल्यवर्धन उत्पाद और महिला सहकारी उद्यमों के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है।

मैनेज के कार्यक्रम राष्ट्रीय मत्स्य विकास बोर्ड (NFDB), हैदराबाद के साथ मिलकर संचालित किए जा रहे हैं। इस सहयोगात्मक प्रयास से न केवल प्रशिक्षण की गुणवत्ता बढ़ी है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सृजन, आयवृद्धि और आर्थिक सशक्तिकरण भी सुनिश्चित हुआ है। मत्स्य पालन और जलीय कृषि में कौशल में सुधार करने के लिए, मैनेज ने अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी), और सामान्य श्रेणी की आबादी, विशेष रूप से मछुआरों, महिलाओं और युवाओं के लिए नियमित रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता हैं। मैनेज ने वर्ष २०२१-२०२५ के दौरान 25 प्रशिक्षण साझेदारों (जैसे केवीके, गैर सरकारी संगठन, मत्स्य विज्ञान महाविद्यालय, एक्वा वन केंद्र) के साथ मिलकर लगभग १६ राज्यों में एक, तीन और पांच दिवसीय १५५ प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा ६४०५ से ज्यादा मछुआरे, महिलाएं और युवाओं को प्रशिक्षण का अवसर प्रदान किया। प्रशिक्षण न केवल तकनीकी ज्ञान तक सीमित है, बल्कि इसमें उद्यमिता, विपणन, सरकारी योजनाओं की जानकारी और आधुनिक मछली पालन तकनीकों (जैसे बायोफ्लॉक, केज कल्चर, पुनःपरिसंचरण जलीय कृषि प्रणाली (रास), आदि) का भी समावेश है।

ISSN: 3049-2211

प्रशिक्षण में मुख्य केन्द्रित क्षेत्र

- ❖ **प्रशिक्षण और क्षमता विकास** – किसानों, मछुआरों, महिलाओं और युवाओं के लिए।
- ❖ **अनुसंधान एवं सर्वेक्षण** – पशुपालन, बागवानी, रेशम और मत्स्य पालन पर।
- ❖ **राज्य विभागों को सहयोग** – योजनाएं बनाने व प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने में।
- ❖ **परामर्श सेवाएं** – सार्वजनिक और निजी संस्थानों के लिए।
- ❖ **उद्यमिता विकास कार्यक्रम** – युवाओं के लिए स्वरोजगार के अवसर।

उद्यमिता और मत्स्य स्टार्टअप: मत्स्य क्षेत्र में नवाचार की नई लहर

भारत में मत्स्य क्षेत्र में उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए एक **मजबूत और गतिशील इकोसिस्टम** का निर्माण किया जा रहा है। इसके अंतर्गत **प्रमुख संस्थानों में समर्पित फिशरीज इनक्यूबेशन सेंटर (Fisheries Incubation Centers)** की स्थापना की गई है, जो इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये इनक्यूबेशन सेंटर निम्नलिखित स्थानों पर सक्रिय हैं:

- **मैनेज, हैदराबाद (MANAGE-Hyderabad)**
- **आईसीएआर-सीआईएफई, मुंबई (ICAR-CIFE, Mumbai)**
- **आईसीएआर-सीआईएफटी, कोच्चि (ICAR-CIFT, Kochi)**

इन केंद्रों का उद्देश्य मत्स्य क्षेत्र में नवाचार और स्टार्टअप्स को प्रोत्साहित करना है। ये संस्थाएं **फिशरीज स्टार्टअप्स** और **फिश फार्मर प्रोड्यूसर ऑर्गनाइजेशन (FFPOs)** को संपूर्ण समर्थन प्रदान कर रही हैं, जिसमें प्रशिक्षण, परामर्श, वित्तीय मार्गदर्शन और बाजार से जुड़ाव जैसी सेवाएं शामिल हैं।

इस पहल का लक्ष्य एक ऐसा **स्थायी और विस्तार योग्य इकोसिस्टम** तैयार करना है जो उद्यमियों को मत्स्य क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियों का समाधान खोजने और नई संभावनाओं का दोहन करने में सक्षम बनाए। इन इनक्यूबेशन सेंटरों के माध्यम से स्टार्टअप्स को **एक अनुकूल वातावरण** प्राप्त हो रहा है, जिससे वे तेजी से विकसित हो रहे हैं। साथ ही, ये केंद्र **मत्स्य मूल्य श्रृंखला (Fisheries Value Chain)** को सुदृढ़ बनाकर **आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और क्षेत्रीय सततता** में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबंधन संस्थान (मैनेज), हैदराबाद ने मत्स्य पालन और जलीय कृषि क्षेत्र में क्षमता निर्माण, मानव संसाधन विकास, तकनीकी प्रशिक्षण तथा उद्यमिता संवर्धन के माध्यम से ग्रामीण भारत में आर्थिक प्रगति और सामाजिक सशक्तिकरण का मजबूत आधार तैयार किया है। विशेष रूप से अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाएं और युवा वर्ग को ध्यान में रखते हुए मैनेज ने उन्हें आत्मनिर्भर बनने की दिशा में प्रशिक्षित किया है।

मैनेज द्वारा संचालित प्रशिक्षण कार्यक्रम, स्टार्टअप्स और फिश फार्मर प्रोड्यूसर ऑर्गनाइजेशन (FFPOs) को प्रोत्साहन, तथा नीति निर्माण संस्थाओं के साथ साझेदारी—ये सभी पहलें न केवल मत्स्य क्षेत्र की उत्पादन क्षमता और मूल्य श्रृंखला को सशक्त बना रही हैं, बल्कि "विकसित भारत @2047" के लक्ष्य में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। मैनेज का योगदान एक ज्ञान-आधारित, नवाचार-सक्षम और समावेशी मत्स्य तंत्र के निर्माण में है, जो 2047 तक भारत को मत्स्य उत्पादन, रोजगार सृजन और ग्रामीण उद्यमिता में वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाएगा। यह संस्थान "कौशल से स्वावलंबन" और "प्रशिक्षण से परिवर्तन" की प्रेरणा के साथ विकसित भारत के निर्माण में एक मजबूत स्तंभ बनकर उभर रहा है।

■■■

ISSN: 3049-2211

प्रायिकता : एक संकल्पना और उसका कृषि में प्रयोग

लोकेश कुमार कुमावत*, डॉ. पी. बी. मारविया[1] और डॉ. जी. के. चौधरी[2]

*एम. एस. सी. शोधार्थी, कृषि सांख्यिकी विभाग, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, एस. के. नगर, दांतीवाड़ा, बनासकांठा, गुजरात

[1]सहायक आचार्य, कृषि सांख्यिकी विभाग, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, एस. के. नगर, दांतीवाड़ा, बनासकांठा, गुजरात

[2]सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, कृषि सांख्यिकी विभाग, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, एस. के. नगर, दांतीवाड़ा, बनासकांठा, गुजरात

भूमिका

खेती-किसानी प्रकृति पर आधारित कार्य है, जिसमें कई अनिश्चितताएँ रहती हैं। मौसम का परिवर्तन, वर्षा का समय, कीट और बीमारियों का हमला, तथा बाजार में दाम उतार-चढ़ाव – ये सब किसान की मेहनत और आय पर सीधा असर डालते हैं। ऐसे में किसानों के पास जो सबसे महत्वपूर्ण ज्ञान होना चाहिए, वह है **अनिश्चितता को समझकर सही निर्णय लेना।** इसी को वैज्ञानिक भाषा में प्रायिकता कहते हैं।

प्रायिकता क्या है?

- सरल शब्दों में प्रायिकता का अर्थ है किसी घटना के घटित होने की संभावना।

  जैसे – कल बारिश होने की संभावना 70% बताई गई है, तो इसका अर्थ है कि 100 में से 70 बार ऐसे हालात में बारिश होगी और 30 बार नहीं होगी।

- किसान के लिए प्रायिकता का महत्व यह है कि वह पूरी तरह निश्चित बात न होकर, संभावनाओं के आधार पर उचित योजना बना पाए।

कृषि में प्रायिकता का प्रयोग

किसान अपनी फसल और पशुपालन में कई जगह प्रायिकता की सोच से लाभ उठा सकते हैं। प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं –

1. मौसम और वर्षा का अनुमान

- यदि मौसम विभाग कहता है कि अगले सप्ताह वर्षा की संभावना 60% है, तो किसान बीज बोने या उर्वरक डालने का निर्णय उसी के अनुसार कर सकता है।
- कम संभावना के दिनों में सिंचाई की अग्रिम तैयारी रखी जा सकती है।

2. कीट और रोग नियंत्रण

- यदि यह अनुमान लगाया जाए कि किसी माह में कपास पर कीट के आक्रमण की संभावना 40% है, तो किसान पहले ही रोकथाम के उपाय (जैविक कीटनाशक, ट्रैप आदि) लगा सकता है।
- इससे फसल की हानि काफी हद तक रोकी जा सकती है।

3. बाजार मूल्य का पूर्वानुमान

- फसल बिकने के समय इसका मूल्य बदलता रहता है।
- यदि पिछले 10 वर्षों के आंकड़ों में यह पाया जाए कि दाम 70% संभावना से दिसंबर तक बढ़ जाते हैं, तो किसान उचित भंडारण करके बेहतर दाम का इंतजार कर सकता है।

4. बीमा और जोखिम प्रबंधन

- प्रायिकता के आधार पर कंपनियाँ फसल बीमा तय करती हैं।
- किसान भी इस ज्ञान से यह तय कर सकता है कि बीमा में निवेश करना उसके लिए लाभदायक रहेगा या नहीं।

किसानों के लिए लाभ

- नुकसान की संभावना कम करना
- समय पर उचित निर्णय लेना
- कम खर्च में अधिक लाभ प्राप्त करना
- भविष्य के लिए बेहतर योजना बनाना

आसान उदाहरण

मान लीजिए गेहूँ की फसल में रोग लगने की संभावना 30% (यानि 100 में से 30 बार) है।

- यदि किसान बिल्कुल तैयारी नहीं करता, तो उसे हर तीसरी बार भारी नुकसान होगा।
- लेकिन अगर वह शुरुआती सुरक्षा उपाय (बीजोपचार, जैविक स्प्रे आदि) कर लेता है, तो नुकसान की संभावना काफी घटकर 10% से भी कम हो सकती है।

निष्कर्ष

अनिश्चितता को डर मानने के बजाय, उसे प्रायिकता के विज्ञान से समझकर, उसी को अपने पक्ष में बदला जा सकता है। खेती में सफलता केवल मेहनत पर नहीं, बल्कि सही समय पर किए गए निर्णयों पर भी निर्भर करती है। प्रायिकता की समझ किसानों को यह सिखाती है कि भविष्य को पूरी तरह नियंत्रित न कर पाने के बावजूद, वे संभावनाओं का आकलन करके अपने नुकसान को कम और मुनाफ़े को अधिक कर सकते हैं। इसलिए आधुनिक खेती में प्रायिकता का ज्ञान उतना ही जरूरी है जितना उर्वरक या सिंचाई।

ISSN: 3049-2211

फॉल आर्मीवर्म: मक्का का प्रमुख कीट

रामकुमार निरंजन[1*], गौरी शंकर गिरि[1], राम केवल[1]

[1]कीट विज्ञान एवं कृषि जंतु विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.)

परिचय

मक्का (*ज़िया मेज एल.*) विश्व की प्रमुख अनाज फसलों में से एक है, जिसका उपयोग खाद्य, चारा और औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जाता है। भारत में यह खरीफ की मुख्य फसल है, किंतु अब इसे रबी और ग्रीष्म ऋतु में भी उगाया जा रहा है। परंतु हाल के वर्षों में मक्का उत्पादन के समक्ष एक गंभीर चुनौती के रूप में फॉल आर्मीवर्म (*स्पोडोप्टेरा फ्रुजीपरडा*) का प्रकोप सामने आया है। यह कीट एक आक्रामक और बहुभोजी कीट है, जो विशेष रूप से मक्का की फसल को भारी नुकसान पहुँचाता है। वर्तमान समय में इसे भारत ही नहीं बल्कि पूरे एशिया और अफ्रीका में मक्का की फसल का प्रमुख कीट माना जा रहा है।

उत्पत्ति और प्रसार

फॉल आर्मीवर्म मूल रूप से अमेरिका महाद्वीप का कीट है। यह सबसे पहले 2016 में अफ्रीका में देखा गया और देखते ही देखते अफ्रीकी महाद्वीप के अधिकांश हिस्सों में फैल गया। भारत में इसकी पहचान सबसे पहले 2018 में कर्नाटक राज्य में हुई। इसके बाद यह कीट तेजी से देश के अन्य राज्यों जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश तक फैल गया। वर्तमान में यह भारत के लगभग सभी मक्का उत्पादक क्षेत्रों में पाया जा रहा है।

पहचान

फॉल आर्मीवर्म का वैज्ञानिक नाम स्पोडोप्टेरा फ्रुजीपरडा (परिवार – नोक्टुइडे) है। इसकी लार्वा अवस्था सबसे अधिक हानिकारक होती है। लार्वा हरे से भूरे रंग का होता है और इसके सिर पर स्पष्ट उल्टे "Y" आकार का निशान पाया जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर पर चार विशिष्ट काले धब्बे (spots) पाए जाते हैं, जो इसकी पहचान में सहायक होते हैं।

फसल पर प्रभाव

फॉल आर्मीवर्म मक्का की फसल के विभिन्न हिस्सों पर आक्रमण करता है। छोटे पौधों की पत्तियों को खुरच कर खाता है जिससे सफेद धारियाँ बन जाती हैं। पौधों की बढ़ती अवस्था में यह लार्वा पत्तियों में छेद करता है और पत्तियों को कुतरता है। गंभीर स्थिति में यह मक्का की भुट्टियों और दानों को भी नुकसान पहुँचाता है। परिणामस्वरूप फसल की पैदावार में 30 से 70 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है।

ISSN: 3049-2211

वर्तमान स्थिति

आज की परिस्थिति में फॉल आर्मीवर्म मक्का की फसल का सबसे प्रमुख कीट बन चुका है। यह न केवल उत्पादन घटाता है बल्कि किसानों की लागत भी बढ़ा देता है। इसका जीवन चक्र तेज़ है और यह कई प्रकार की जलवायु परिस्थितियों में जीवित रह सकता है, जिससे इसका प्रबंधन और भी चुनौतीपूर्ण बन जाता है।

फॉल आर्मीवर्म का जीवन चक्र

फॉल आर्मीवर्म का जीवन चक्र चार अवस्थाओं- अंडा, लार्वा, प्यूपा और वयस्क में पूर्ण होता है। यह एक **पूर्ण कायांतरण** है।

(क) अंडा अवस्था

- मादा पतंगा अपने जीवन काल में 1000-2000 तक अंडे दे सकती है।
- अंडे पत्तियों की निचली सतह पर गुच्छों में दिए जाते हैं और उन पर भूरे रंग के शल्क ढक देते हैं।
- एक अंडे की अवधि लगभग 2-3 दिन होती है।

(ख) लार्वा अवस्था

- यह कीट की सबसे हानिकारक अवस्था है।
- अंडों से निकले छोटे लार्वा पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचते हैं, जिससे सफेद रेखाएँ बन जाती हैं।
- लार्वा का रंग हरे से लेकर भूरे तक होता है और इसके सिर पर स्पष्ट उल्टे "Y" आकार का निशान पाया जाता है।
- शरीर पर पीछे की ओर चार काले धब्बे होते हैं।
- लार्वा अवस्था लगभग 14-22 दिन तक रहती है और इस अवधि में 6 इन्स्टार पूरे करता है।

(ग) प्यूपा अवस्था

- परिपक्व लार्वा मिट्टी में जाकर प्यूपा बनते हैं।
- यह अवस्था लगभग 7-13 दिन तक रहती है।

(घ) वयस्क अवस्था

- वयस्क पतंगे मध्यम आकार के होते हैं, जिनके अग्र पंख भूरे और पिछले पंख हल्के सफेद रंग के होते हैं।
- नर और मादा पतंगे अलग-अलग दिखते हैं।
- एक वयस्क का जीवनकाल 7-21 दिन तक हो सकता है।

इस प्रकार फॉल आर्मीवर्म का एक पूरा जीवन चक्र 30-40 दिनों में पूरा हो जाता है। गर्म जलवायु में यह और तेज़ी से पूरा होता है और वर्ष भर कई पीढ़ियाँ पैदा करता है।

2. फॉल आर्मीवर्म के हानिकारक प्रभाव

फॉल आर्मीवर्म मुख्य रूप से मक्का पर आक्रमण करता है, लेकिन यह अन्य फसलों (ज्वार, बाजरा, गन्ना, धान आदि) पर भी प्रकोप कर सकता है।

(क) शुरुआती लक्षण

- छोटे लार्वा पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचते हैं।
- इससे पत्तियों पर सफेद या पारदर्शी धारियाँ बन जाती हैं।

(ख) पत्तियों पर लक्षण

- बड़े लार्वा पत्तियों को छेदते हैं या किनारों को खा जाते हैं।
- गंभीर स्थिति में पौधों की पत्तियाँ पूरी तरह से कुतरी हुई दिखाई देती हैं।
- पत्तों की निचली सतह और तने के पास लार्वा का मल जमा हो जाता है, जो प्रकोप का स्पष्ट संकेत है।

(ग) मक्का की बढ़वार पर प्रभाव

- यदि हमला शुरुआती अवस्था में हो, तो पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फसल की पैदावार में भारी कमी होती है।
- पौधे की पत्तियों का केंद्र भाग पर लार्वा छिपकर खाते हैं।

(घ) भुट्टियों पर प्रभाव

- मक्का की भुट्टियों और दानों पर लार्वा आक्रमण कर देता है।
- इससे दाने अधूरे विकसित होते हैं या सड़ने लगते हैं।
- उपज और गुणवत्ता दोनों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

(ङ) नुकसान की सीमा

- फॉल आर्मीवर्म का प्रकोप फसल में 30% से 70% तक उपज हानि पहुँचा सकता है।
- यदि समय पर नियंत्रण न किया जाए तो पूरी की पूरी फसल नष्ट हो सकती है।

फॉल आर्मीवर्म के हानिकारक प्रभाव

ISSN: 3049-2211

3. फॉल आर्मीवर्म का एकीकृत प्रबंधन

1. निगरानी एवं पहचान

- खेतों में नियमित निगरानी करें, विशेषकर मक्का की 20-30 दिन की अवस्था में।
- फेरोमोन जाल (4-5 traps/acre) लगाएँ ताकि वयस्क पतंगों की उपस्थिति समय रहते पकड़ी जा सके।
- पौधों की पत्तियों का केंद्र भाग और पत्तियों पर अंडे, लार्वा और मल की पहचान करें।
- 5-10% पौधों में लक्षण दिखते ही प्रबंधन शुरू करें।

2. सांस्कृतिक उपाय

- समय पर बुवाई करें ताकि पौधें अधिक मजबूत हों और नुकसान कम हो।
- खेत में फसल अवशेष न छोड़ें, इन्हें नष्ट करें क्योंकि इनमें कीट का प्रकोप बना रहता है।
- मक्का को अकेले न बोएँ, बल्कि इंटरक्रॉपिंग (जैसे- मक्का + दलहन फसलें) अपनाएँ।
- खेत की जुताई गहरी करें, जिससे प्यूपा नष्ट हो जाएँ।
- खेत की मेड़ पर नीम की खली या जैव उर्वरक डालने से भी प्रभाव कम होता है।

3. यांत्रिक एवं भौतिक उपाय

- अंडों के गुच्छों और छोटे लार्वा को हाथ से नष्ट करें।
- पौधों की पत्तियों का केंद्र भाग से लार्वा को निकालकर दबाएँ।
- प्रकाश जाल लगाकर वयस्क पतंगों को आकर्षित करके नष्ट करें।
- पौधों की होल में **रेत + राख + नीम पाउडर** डालने से लार्वा मर जाते हैं।

4. जैविक नियंत्रण

i. परजीवी कीट

- *ट्राइकोग्रामा* एवं *टेलीनोमस रेमस* अंडों पर परजीवी होते हैं।
- *कोटेसिया मार्जिनिवेंट्रिस* एवं *चेलोनस इंसुलैरिस* लार्वा पर परजीवी होते हैं।

ii. परभक्षी कीट

- लेडी बर्ड बीटल, मकड़ियाँ आदि प्राकृतिक शत्रु हैं।

iii. जैव-कीटनाशक (Bio-pesticides):

- *ब्यूवेरिया बेसियाना, मेटारिज़ियम एनिसोप्लिए* जैसे कवक आधारित बायोपेस्टिसाइड्स।
- *बैसिलस थुरिंजिएन्सिस* वैरायटी *कुर्स्तांकी* का छिड़काव प्रभावी है।
- 5% नीम तेल या 1500 ppm अजादिरैक्टिन का प्रयोग करें।

5. रासायनिक नियंत्रण

रसायनों का उपयोग अंतिम विकल्प के रूप में और केवल आर्थिक क्षति स्तर (ETL) से अधिक प्रकोप पर करना चाहिए।

- इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी @ 0.4 ग्राम/लीटर पानी।
- स्पिनेटोरम 11.7 एससी @ 0.5 मिली/लीटर पानी।
- क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी @ 0.3 मिली/लीटर पानी।
- थियोडिकार्ब 75 WP @ 1 ग्राम/लीटर पानी।
- छिड़काव शाम के समय करें जब लार्वा सक्रिय हों।
- हमेशा कीटनाशक बदलते रहें ताकि प्रतिरोध न बने।

6. सामुदायिक भागीदारी

- चूँकि पतंगे उड़कर लंबी दूरी तक जा सकते हैं, इसलिए केवल एक खेत में नियंत्रण पर्याप्त नहीं है।
- गाँव स्तर पर सामूहिक निगरानी और नियंत्रण जरूरी है।
- किसानों को नियमित प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए।

निष्कर्ष

फॉल आर्मीवर्म का प्रकोप बहुत तेज़ी से फैलता है और यदि समय रहते रोकथाम न की जाए तो यह मक्का की पैदावार में 30-70% तक नुकसान पहुँचा सकता है। एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) अपनाकर ही इस कीट पर स्थायी नियंत्रण संभव है। इसके लिए किसानों को सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक और रासायनिक उपायों का संतुलित मिश्रण अपनाना चाहिए।

■■■

ISSN: 3049-2211

अपने कृषि अपशिष्ट को काले सोने(ब्लैक गोल्ड) में बदलें: बायोचार बनाने में एक किसान के लिए मार्गदर्शिका

आलोक कुमार
परास्नातक छात्र, मृदा विज्ञान एवम् कृषि रसायन
प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन विद्यालय, स्नातकोत्तर कृषि विज्ञान महाविद्यालय, केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय (इम्फाल), उमियाम, मेघालय

भूमिका

किसानों के रूप में, हम अपनी भूमि से गहराई से जुड़े हुए हैं। हम जानते हैं कि स्वस्थ मिट्टी का मतलब स्वस्थ फसल और बेहतर आजीविका है। लेकिन समय के साथ, मिट्टी अपनी ताकत खो सकती है। क्या होगा अगर आपके रोजमर्रा के खेत के कचरे जैसे सूखी पत्तियां, चावल की भूसी, और लकड़ी के स्क्रैप का कोई तरीका हो एक सुपर-सामग्री बनाने का, जो आपकी मिट्टी को वर्षों तक उपजाऊ बनाता है? इस जादुई सामग्री को बायोचार कहा जाता है, और आप इसे आसानी से अपने खेत में बना सकते हैं। इसे अपने खेतों के लिए "काला सोना" बनाने के रूप में सोच सकते हैं।

बायोचार असल में क्या है?

एक बहुत कठोर, काले स्पंज की कल्पना करें। यही बायोचार के बारे में सोचने का सबसे सरल तरीका है। यह मिट्टी के लिए बनाया गया एक विशेष प्रकार का कोयला है ।जब आप बायोचार को अपनी मिट्टी में मिलाते हैं, तो इसके छोटे-छोटे छिद्र अद्भुत काम करते हैं:

- **अच्छे बैक्टीरिया का घर:** ये छोटे छिद्र मित्रालु माइक्रोब और कवक के लिए एक सुरक्षित निवास प्रदान करते हैं, जो आपकी पौधों को मजबूत विकसित करने में मदद करते हैं। यह आपकी मिट्टी में सभी अच्छे श्रमिकों के लिए पांच सितारा होटल बनाने के सामान है।
- **पानी और पोषक तत्व का मैग्नेट:** एक स्पंज की तरह, बायोचार पानी और पोषक तत्वों को पकड़ता है। भारी बारिश के दौरान, यह अतिरिक्त पानी और पोषक तत्वों को सोखता है, जिससे वे बह नहीं जाते। सूखी मौसम के दौरान, यह धीरे-धीरे यह पानी पौधों की जड़ों में वापस छोड़ता है। इसका मतलब है कि आपको अपने फसल को कम बार पानी देना पड़ सकता है!
- **मिट्टी की संरचना में सुधार:** यह भारी, कीचड़ जैसी मिट्टी को हल्का बनाता है और रेतीली मिट्टी को बेहतर रूप से एक साथ रखने में मदद करता है। इससे पौधों की जड़ें सांस ले सकती हैं और अधिक आसानी से बढ़ सकती हैं।

ISSN: 3049-2211

महत्वपूर्ण : बायोचार राख से अलग है। राख ग्रे पाउडर जैसी चीज है जो एक आग के पूरी तरह से जलने के बाद खुली हवा में बची रहती है। राख में कुछ खनिज होते हैं लेकिन इसमें वह स्पॉज जैसी संरचना नहीं होती है जो बायोचार में होती है और ये संरचना बायोचार को इतना मूल्यवान बनाती है। बायोचार काला, हल्का और छिद्रपूर्ण होता है क्योंकि इसे एक विशेष तरीके से बनाया जाता है।

बायोचार बनाने की प्रक्रिया:

बायोचार बनाने की प्रक्रिया को पायरोलिसिस कहा जाता है। यह एक जटिल वैज्ञानिक शब्द की तरह लग सकता है, लेकिन प्रक्रिया बहुत सरल है: जैविक कचरे को बहुत कम या बिना ऑक्सीजन के गर्म करना। एक आलू को पकाने करने के बारे में सोचिए। अगर आप इसे एक गर्म ओवन (ताप) में फॉयल में लपेटकर डालते हैं (बिना ऑक्सीजन के), तो यह पक जाता है और अंदर से नरम हो जाता है। अगर आप इसे सीधे एक बड़े आग में (बहुत अधिक ऑक्सीजन के साथ गर्मी) फेंक दें, तो यह केवल राख में जल जाएगा। बायोचार बनाना समान है। हम खेत के कचरे को 'पकाना' चाहते हैं, जलाना नहीं। जब हम जैव मास (आपके खेत का कचरा) को कम ऑक्सीजन वाले वातावरण में गर्म करते हैं, तो पानी और अन्य गैसें निकल जाती हैं, जिससे एक काली, कार्बन-समृद्ध सामग्री — बायोचार — बचती है।

जैव मास + गर्मी – ऑक्सीजन = बायोचार

बायोचार बनाने के लिए सरल उपकरण और तकनीकें

आपको बायोचार बनाने के लिए महंगी मशीनरी की ज़रूरत नहीं है। यहां दो सरल, कम लागत के तरीके हैं जिन्हें आप आजमा सकते हैं।

विधि 1: यह सबसे बुनियादी तरीका है और इसके लिए केवल एक फावड़ा और थोड़े पानी की आवश्यकता है।

आपको चाहिए: एक खुदाई करने वाली फावड़ा ,सूखे खेत के कचरे (लकड़ी के टुकड़े, मक्का के अट्ठन, मोटी डालियाँ), प्रक्रिया को रोकने के लिए पानी का एक स्रोत।

बनाने की प्रक्रिया:

1. **एक गड्ढा खोदें:** जमीन में एक शंक्वाकार गड्ढा खोदें। शीर्ष पर लगभग 3-4 फीट गहरा और 5 फीट चौड़ा गड्ढा एक अच्छा प्रारंभ है।

2. **आग लगाएं:** गड्ढे के तले सूखे पत्ते और छोटे टहनियों जैसे आसानी से जलने वाले सामग्री रखें और आग लगाएं।

3. **जैविक पदार्थ जोड़ें:** जब आग अच्छी तरह जलने लगे, तो अपने बड़े जैव मास के कचरे (जैविक पदार्थ) को इसके ऊपर परत दर परत जोड़ना शुरू करें, ताकि नीचे की आग ऊपर की सामग्री को 'पकाए'।

4. **धुएं को देखें:** आप पहले बहुत सारा मोटा, सफेद धुआं देखेंगे। यह पानी और अन्य गैसें हैं जो बाहर आ रही हैं। जैविक पदार्थ की परतें जोड़ते रहें। कुछ समय बाद, धुआं पतला और स्पष्ट हो जाएगा। यह एक संकेत है कि बायोचार बन रहा है।

5. **आग बुझाएं:** यह सबसे महत्वपूर्ण कदम है! सामग्री को राख में बदलने से पहले, आपको प्रक्रिया को रोकना होगा। सबसे आसान तरीका है पूरे गड्ढे पर पानी स्प्रे करना जब तक आग पूरी तरह से न बुझ जाए और कोई धुआं न रह जाए। फुसफुसाने की आवाज आपको बताएगी कि चार ठंडा हो रहा है।

6. **अपने बायोचार को इकट्ठा करें:** जब यह पूरी तरह से ठंडा हो जाए, तो आप काले, हल्के बायोचार को इकट्ठा कर सकते हैं।

लाभ: अत्यधिक कम लागत।

हानि: यह धुआँदार हो सकता है, और बायोचार की गुणवत्ता को नियंत्रित करना कठिन होता है।

विधि 2: इस विधि में एक धातु का ड्रम का उपयोग किया जाता है जिससे अधिक सफाई से जैव मास जलता है और बेहतर गुणवत्ता का बायोचार प्राप्त होता है। इसे अक्सर TLUD कहा जाता है, जिसका मतलब है टॉप-लिट अप-ड्राफ्ट।

आपको चाहिए: एक साफ, खाली धातु का ड्रम (200 लीटर), ड्रम में छेद बनाने के लिए उपकरण, सूखा कचरा/ जैव मास

बनाने की प्रक्रिया:

1. **ड्रम तैयार करें:** ड्रम के नीचे के किनारे के चारों ओर कई छोटे छेद (आपकी अंगुली के आकार के) बनाएं। ये छेद एक छोटी, नियंत्रित मात्रा में हवा को अंदर आने देंगे।

2. **ड्रम भरें:** अपने सूखे जैव मास को ड्रम में मजबूती से भरें । बड़े टुकड़े नीचे रखें और छोटे टुकड़े ऊपर। इसे लगभग ऊपर तक भरें।

3. **ऊपर से जलाएँ:** गड्ढे की विधि के विपरीत, आप ड्रम के अंदर जैव मास के ऊपर एक छोटा आग जलाएँगे। **4. इसे जलने दें:** आग धीरे-धीरे ड्रम के नीचे की ओर जाएगी। जैसे-जैसे यह जलती है, ऊपर की परत का ताप नीचे की परत को ऑक्सीजन के बिना बायो चार में 'पकाता' है। उत्पादित धुआं कहीं अधिक कम और साफ होता है क्योंकि इसे ऊपर की आग से गुजरना होता है।

5. **प्रक्रिया रोकें:** जब आग नीचे तक पहुँच जाए (यह धुआँ छोड़ना बंद कर देगी), आप ऊपर ढक्कन से बंद कर सकते हैं और नीचे के छिद्रों को रोक सकते हैं ताकि सभी हवा बंद हो जाए। इसे पूरी तरह से ठंडा होने दें, कुछ घंटों या रात भर। वैकल्पिक रूप से, आप धीरे से ड्रम को झुका सकते हैं और गर्म चार को पानी से ठंडा कर सकते हैं।

ISSN: 3049-2211

6. बायोचार को इकट्ठा करें: एक बार ठंडा होने पर, ड्रम को खाली करें और अपने उच्च गुणवत्ता वाले बायोचार को इकट्ठा करें।

लाभ: अधिक प्रभावी है, कम धुआँ छोड़ता है, और अधिक समान बायोचार बनाता है।

हानि: एक धातु का ड्रम और कुछ साधारण संशोधन की आवश्यकता होती है।

अपने बायोचार को मिट्टी के लिए तैयार करना

आप अपने खेतों में ताज़ा बायोचार सीधे नहीं डाल सकते। कच्चा बायोचार एक खाली स्पंज की तरह होता है; यदि आप इसे मिट्टी में डालते हैं, तो यह पहले सभी मौजूदा पोषक तत्वों को अवशोषित कर लेगा, जिससे आपके पौधों को अस्थायी रूप से पोषण की कमी होगी।आपको पहले अपने बायोचार को "चार्ज" या "सक्रिय" करना होगा। इसका मतलब है कि इसे मिट्टी में डालने से पहले इसके रोमछिद्रों को पोषक तत्वों और अच्छे सूक्ष्मजीवों से भरना।

बायोचार को चार्ज करने का तरीका: सबसे अच्छा तरीका यह है कि इसे खाद के साथ मिलाया जाए।

1. बायोचार के किसी भी बड़े टुकड़े को छोटे, कंकरी जैसे टुकड़ों में तोड़ें।
2. बायोचार को अपनी खाद की ढेर या गाय के गोबर की खाद, मुर्गी के मल की खाद, या किसी भी जैविक उर्वरक के साथ मिलाएं। शुरू करने का एक अच्छा अनुपात है 1 भाग बायोचार और 5 भाग खाद।
3. मिश्रण को नम बनाने के लिए थोड़ा पानी दें और इसे कम से कम दो से तीन सप्ताह तक बैठने दें।
4. इस दौरान, बायोचार पोषक तत्वों को अवशोषित करेगा और खाद से सूक्ष्मजीवों का घर बन जाएगा।

अपने खेतों में "ब्लैक गोल्ड" का उपयोग करना

एक बार जब आपका बायोचार चार्ज/ सक्रिय हो जाए, तो आप इसे अपने मिट्टी में डाल सकते हैं। इसे पौधा लगाने से पहले अपनी मिट्टी की ऊपरी 4-6 इंच भाग में मिलाएं। एक अच्छा उपयोग लगभग आधा किलोग्राम से एक किलोग्राम बायोचार प्रति वर्ग मीटर भूमि में है।बायोचार बनाकर और उपयोग करके, आप केवल कृषि अपशिष्ट से छुटकारा नहीं पा रहे हैं। आप अपनी मिट्टी के स्वास्थ्य में एक दीर्घकालिक निवेश कर रहे हैं। यह "ब्लैक गोल्ड" आपके लिए काम करना जारी रखेगा, आपकी मिट्टी की संरचना में सुधार करेगा, पानी बचाएगा, और आपके लिए कई सालों तक स्वस्थ फसलें उगाने में मदद करेगा। छोटे से शुरू करें, अपने पास मौजूद अपशिष्ट सामग्री के साथ प्रयोग करें, और अपनी खेती को फलता-फूलता देखें।

■■■

ISSN: 3049-2211

बागवानी और सब्जी फसलों में कार्बन पृथक्करण

सीताराम सारण, प्रदीप एवं प्रणव प्रांजल
उत्तर बंग कृषि विश्वविद्यालय (UBKV)
स्थान: पुंडीबाड़ी, कूचबिहार, पश्चिम बंगाल

1. प्रस्तावना

- जलवायु परिवर्तन हमेशा पृथ्वी के प्राकृतिक इतिहास का एक हिस्सा रहा है। यह दशकों या हजारों वर्षों में भी हो सकता है। हालांकि, वार्मिंग की वर्तमान दर एक बड़ी चिंता है क्योंकि वैज्ञानिकों का कहना है कि 95% से अधिक संभावना है कि 1900 के दशक के मध्य से मानव गतिविधियां मुख्य कारण हैं।
- मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करते हुए हवा में CO2 को कम करने के व्यावहारिक और किफायती तरीकों की अब अधिक मांग है। एक आशाजनक तरीका कार्बन अनुक्रम है। इसका अर्थ है हवा से CO2 को कैप्चर करना और इसे पौधों, मिट्टी, महासागरों और अन्य प्राकृतिक क्षेत्रों जैसे स्थानों में संग्रहीत करना। यह जलवायु परिवर्तन को धीमा करने में मदद करता है और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करता है, जो बेहतर पौधों की वृद्धि का समर्थन करता है
- बागवानी फसलें, विशेषकर सब्जियां और फलदार पौधे, मिट्टी में कार्बन संग्रह करने की जबरदस्त क्षमता रखती हैं।

2. कार्बन पृथक्करण क्या है?

- पौधे वायुमंडल से कार्बन अवशोषित करते हैं (प्रकाश संश्लेषण)।
- यह कार्बन उनकी जैविक संरचना (बायोमास) और मिट्टी में संग्रहित हो जाता है।
- मिट्टी में संग्रहीत जैविक कार्बन (SOC) जलवायु नियंत्रण और मिट्टी की उर्वरता के लिए जरूरी है।
- अच्छे प्रबंधन से कृषि भूमि हर साल 1.2 अरब टन CO_2 को अवशोषित कर सकती है।

3. बागवानी फसलें क्यों उपयुक्त हैं?

बागवानी फसलें बहुवर्षीय प्रकृति की होती हैं, जिसके कारण ये लंबे समय तक जीवित रहती हैं और अधिक बायोमास बनाती हैं। इन फसलों की जड़े गहरी होती हैं, जिससे ये मिट्टी में गहराई तक कार्बन संग्रह करती हैं। ये फसलें मिट्टी को ढक कर रखती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव और कार्बन हानि कम होती है। बागवानी फसलों में कम कृषि क्रियाएँ की जाती हैं, जिससे मिट्टी में कार्बन नुकसान धीरे-धीरे घटता है। फसल विविधता सूक्ष्मजीवों और मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ावा देती है।

ISSN: 3049-2211

उदाहरण: सेब का बाग: 20–30 टन CO_2/हेक्टेयर/वर्ष, टमाटर खेत: 10–15 टन CO_2/हेक्टेयर/वर्ष, कृषि वानिकी: 3–5 टन CO_2/हेक्टेयर/वर्ष.

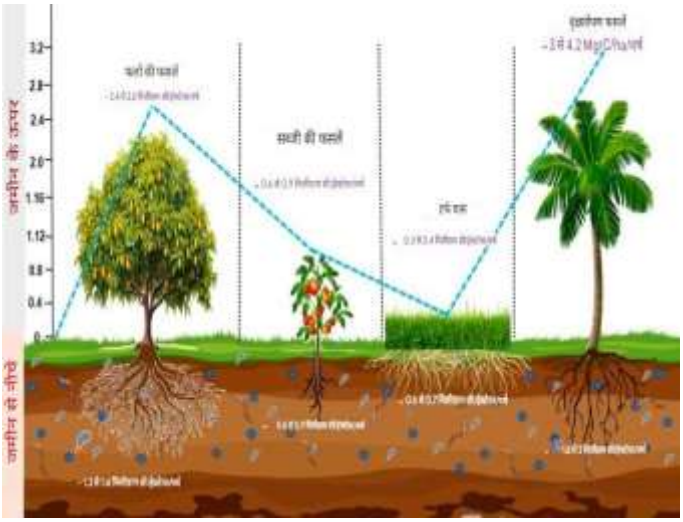

4. कार्बन पृथक्करण की क्रियाविधि

यह फ़्लोचार्ट एक पारिस्थितिकी तंत्र में कार्बन प्रवाह और ऊर्जा की गतिशीलता को दिखाता है, विशेष रूप से पौधे की उत्पादकता, अपघटन और मिट्टी के बायोमास संचय पर केंद्रित है। यहां प्रक्रिया का चरण-दर-चरण विवरण दिया गया है:

a) **सकल प्राथमिक उत्पादन (GPP):** - प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से पौधों द्वारा निश्चित कार्बन की कुल मात्रा। रास्ते: एक हिस्सा डार्क रेस्पिरेशन (प्रकाश की अनुपस्थिति में पौधों द्वारा उपयोग की जाने वाली ऊर्जा) में खो जाता है।

b) **नेट प्रकाश संश्लेषण:** - जीपीपी माइनस डार्क श्वसन नेट प्रकाश संश्लेषण देता है। इसका एक हिस्सा प्लांट रेस्पिरेशन (रखरखाव और विकास के लिए उपयोग की जाने वाली ऊर्जा) के माध्यम से खो जाता है।

c) **शुद्ध प्राथमिक उत्पादन (NPP):** - NPP = शुद्ध प्रकाश संश्लेषण - पादप श्वसन। यह पौधों की वृद्धि और अन्य पोषण स्तरों के लिए उपलब्ध ऊर्जा है।

d) **लाइव बायोमास संचय:** -एनपीपी जीवित पौधे बायोमास में योगदान देता है। दो भाग्य: कूड़े और एक्सयूडेट्स (बहाए गए पत्ते, जड़ें, स्राव) बन जाते हैं। रोगाणुओं (माइक्रोबियल खपत) द्वारा खपत।

e) **माइक्रोबियल खपत:** -रोगाणु पौधों की सामग्री को विघटित करते हैं, कुछ कार्बन का उपयोग करते हैं: श्वसन (CO_2 जारी करना) । शुद्ध माध्यमिक उत्पादन (माइक्रोबियल बायोमास) का उत्पादन।

f) **शुद्ध द्वितीयक उत्पादन:** - माइक्रोबियल बायोमास का हिस्सा पौधों में जीवित मृदा बायोमास संचय में योगदान देता है (सहजीवन के माध्यम से, जैसे, माइकोराइजा)। अन्य मिट्टी के जीवों द्वारा भविष्यवाणी के लिए खो गया।

g) **मृदा कार्बनिक पदार्थ:** -रोगाणुओं द्वारा उपभोग नहीं किए गए कूड़े और एक्सयूडेट्स मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों का हिस्सा बन जाते हैं। दीर्घकालिक मृदा कार्बन भंडारण में योगदान देता है। नेट इकोसिस्टम प्रोडक्शन (एनईपी) में वापस फीडिंग।

h) **शुद्ध पारिस्थितिकी तंत्र उत्पादन (एनईपी):** - सिस्टम में बनाए गए कार्बन का अंतिम उपाय। एनईपी = एनपीपी - (संयंत्र + माइक्रोबियल श्वसन)। इंगित करता है कि पारिस्थितिकी तंत्र कार्बन सिंक या स्रोत है या नहीं।

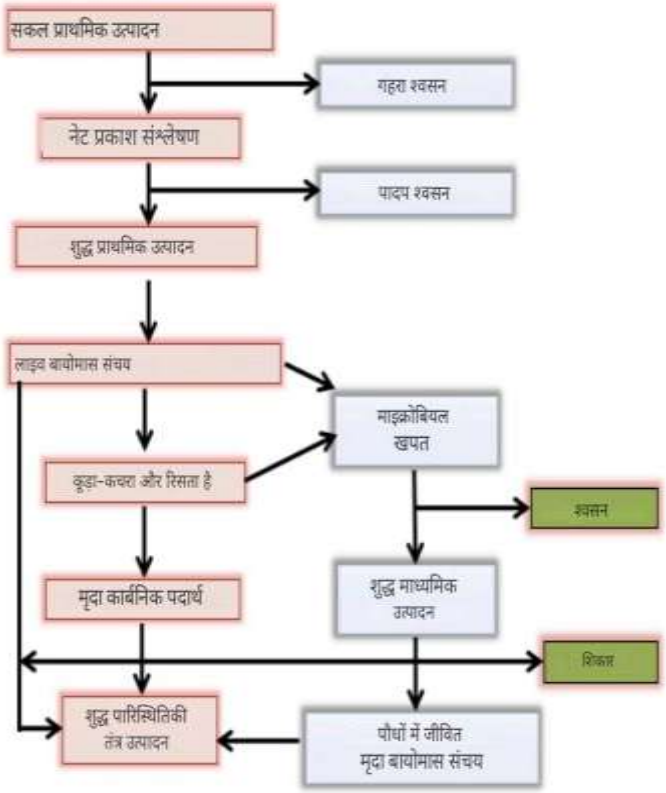

चित्र 1. कार्बन पृथक्करण का क्रियाविधि

5. मिट्टी में जैविक कार्बन (SOC) का महत्व

- हवा से CO2 को पकड़ता है और इसे पौधों और मिट्टी में संग्रहीत करता है
- मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है, जिससे सब्जियाँ बेहतर तरीके से उगती हैं

- समय के साथ उपज और फसल की गुणवत्ता में वृद्धि होती है
- मृदा अपरदन को कम करता है और भूमि को स्वस्थ रखता है
- कार्बन भंडारण सामान्य कृषि भूमि की तुलना में 25-100 गुना अधिक है
- वायुमंडल में CO2 को कम करके ग्लोबल वार्मिंग को कम करता है
- पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करता है और जैव विविधता को बढ़ावा देता है
- मिट्टी में जैविक कार्बन में मौजूद 70% कार्बन को संग्रह करता है।

6. कार्बन बढ़ाने वाली फसल प्रणालियाँ

- **फसल चक्र (Crop Rotation)**
  दलहनी और सब्जी फसलों का चक्र मिट्टी में कार्बन बढ़ाता है।
- **मिश्रित खेती (Intercropping)**
  दो या अधिक फसलें साथ लगाकर अधिक बायोमास और कार्बन संग्रह।
- **ढकने वाली फसलें (Cover Cropping)**
  जैसे मूली या लोबिया⟶ **3 महीने में 8 Mg/ha SOC**
- **साथी क्रॉपिंग (Companion Cropping)**
  जैविक खेती में लाभकारी साथी फसलें जैव विविधता और मिट्टी सुधार करती हैं।
- **रैटून क्रॉपिंग**
  जैसे भिंडी (Okra), एक बार लगाने पर 2-3 बार कटाई।
  लागत कम, उत्पादन ज़्यादा, कार्बन संग्रह अधिक।

7. बागवानी फसलों से कार्बन उदाहरण

फसल	कार्बन संग्रह क्षमता
आम	258 किलोग्राम/पेड़
मोरिंगा	117.4 किलोग्राम/पेड़
नारियल	98 टन/हेक्टेयर
तेल पाम	71 टन/हेक्टेयर

8. प्रमुख चुनौतियाँ

- माप और निगरानी कठिन और महंगी होती है।
- मिट्टी और जलवायु में भिन्नता से अनुमान लगाना मुश्किल होता है।
- जड़ों और सूखी सामग्री का सटीक आकलन मुश्किल है।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

बागवानी फसलों, विशेष रूप से स्थायी फसलें, में कार्बन अनुक्रम की प्रबल संभावना होती है। ये प्रणालियां मिट्टी कार्बन, जैव विविधता और दीर्घकालिक स्थिरता में सुधार करती हैं। इंटरक्रॉपिंग, कवर क्रॉपिंग और एग्रोफोरेस्ट्री जैसी प्रथाएं कार्बन भंडारण को बढ़ावा दे सकती हैं। पूर्ण वैश्विक उपयोग प्रति वर्ष CO_2 के 2 गीगाटन तक कब्जा कर सकता है। फल और रोपण फसलों से कार्बन क्रेडिट के माध्यम से आर्थिक अवसर मौजूद हैं। सफलता बेहतर निगरानी, सहायक नीतियों और टिकाऊ प्रथाओं पर निर्भर करती है। उचित प्रबंधन के साथ, बागवानी जलवायु कार्रवाई और खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

■■■

ISSN: 3049-2211

जैविक खेती और प्राकृतिक खेती : सतत कृषि का आधार

मुनीश पाल [1], अवधेश कुमार [2] एवं राजन चक्रवर्ती [3]

एम. एस. सी. (कृषि) शोधार्थी

कृषि रसायन एवं मृदा विज्ञान विभाग [1,2],

उद्यान विज्ञान विभाग [3],

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश

भूमिका

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में खेती केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि जीवन का आधार है। हरित क्रांति के बाद रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, लेकिन समय के साथ इसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे। मिट्टी की जैविक उर्वरता में कमी, जलस्रोतों का प्रदूषण, जैव विविधता का ह्रास और भोजन में रसायनों के अवशेष जैसी समस्याएँ गहराती गईं। इस परिप्रेक्ष्य में जैविक खेती और प्राकृतिक खेती जैसी पर्यावरण-अनुकूल कृषि पद्धतियाँ स्थायी समाधान के रूप में उभरकर आई हैं।

1. जैविक खेती (Organic Farming)

1.1 परिभाषा

FAO के अनुसार, जैविक खेती एक ऐसी कृषि प्रणाली है जो मिट्टी, पौधे, पशु और पर्यावरण के स्वास्थ्य को बनाए रखने और सुधारने के लिए पारंपरिक ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान का संतुलित उपयोग करती है। इसमें रासायनिक उर्वरकों और सिंथेटिक कीटनाशकों के बजाय जैविक खाद, हरी खाद, वर्मी कम्पोस्ट, जैव उर्वरक और जैविक कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है।

1.2 उद्देश्य

- मिट्टी की संरचना, पोषण और सूक्ष्मजीव सक्रियता में सुधार
- रसायनमुक्त, पौष्टिक और सुरक्षित खाद्य उत्पादन
- पर्यावरण प्रदूषण में कमी
- दीर्घकालिक उत्पादन स्थिरता

1.3 मुख्य घटक

I. **हरी खाद** – ढैंचा, सन, बरसीम जैसी फसलें, जो मिट्टी में जैविक कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाती हैं।

II. **वर्मी कम्पोस्ट** – केंचुओं द्वारा तैयार की गई पोषक तत्वों से भरपूर खाद।

III. **जैव उर्वरक** – राइजोबियम, एजोस्पाइरिलम, फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) आदि।

ISSN: 3049-2211

IV. **जैविक कीटनाशक** – नीम तेल, ट्राइकोडर्मा, बवेरिया बैसियाना आदि।

V. **फसल चक्र एवं मिश्रित खेती** – पोषण संतुलन और कीट नियंत्रण के लिए।

1.4 लाभ

I. मिट्टी की जलधारण क्षमता और वायु संचार में सुधार।

II. फसलों में रोग व कीट प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि।

III. किसानों की स्वास्थ्य सुरक्षा और चिकित्सा व्यय में कमी।

IV. निर्यात बाजार में जैविक उत्पादों की उच्च कीमत।

2. प्राकृतिक खेती (Natural Farming)

2.1 परिभाषा

प्राकृतिक खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें किसी भी प्रकार के रासायनिक इनपुट का उपयोग नहीं किया जाता और अधिकतर संसाधन खेत या स्थानीय स्तर से प्राप्त होते हैं। इसका उद्देश्य शून्य लागत कृषि (Zero Budget Natural Farming) और प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग है।

2.2 मुख्य सिद्धांत

i. **बीजामृत** – बीज उपचार हेतु गोबर, गौमूत्र, चूना और गुड़ का मिश्रण।

ii. **जीवामृत** – गोबर, गौमूत्र, बेसन, गुड़ और मिट्टी से तैयार सूक्ष्मजीव घोल।

iii. **अग्नास्त्र, ब्रह्मास्त्र, नीमास्त्र** – प्राकृतिक कीटनाशक घोल।

iv. **मल्चिंग** – खेत की सतह पर फसल अवशेष फैलाकर नमी संरक्षण और खरपतवार नियंत्रण।

v. **वापसा (Bhapsa) सिद्धांत** – मिट्टी में नमी और वायु का संतुलन बनाए रखना।

2.3 लाभ

i. उत्पादन लागत में भारी कमी।

ii. मिट्टी के जैविक कार्बन और सूक्ष्मजीव सक्रियता में वृद्धि।

iii. स्थानीय नस्ल की गायों के संरक्षण को बढ़ावा।

iv. जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहनशील फसलें।

3. जैविक खेती और प्राकृतिक खेती में अंतर

क्रमांक	पहलू	जैविक खेती	प्राकृतिक खेती
1.	इनपुट स्रोत	जैविक खाद, प्रमाणित जैव उर्वरक, जैविक कीटनाशक	स्थानीय स्तर से उपलब्ध प्राकृतिक इनपुट
2.	प्रमाणीकरण	NPOP, NOP जैसे मानकों के तहत आवश्यक	सामान्यतः आवश्यक नहीं
3.	लागत	मध्यम	न्यूनतम
4.	बाजार	घरेलू व निर्यात (अधिक मूल्य)	मुख्यतः स्थानीय उपभोग
5.	तकनीकी हस्तक्षेप	आधुनिक जैविक तकनीकें	पारंपरिक एवं स्थानीय ज्ञान आधारित

4. ICAR की भूमिका और पहल

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) और इसके अंतर्गत कृषि विज्ञान केन्द्र (KVKs) ने जैविक और प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए अनेक पहलें की हैं:

- **शोध एवं प्रशिक्षण** – जीवामृत, बीजामृत, नीमास्त्र, वर्मी कम्पोस्ट निर्माण की विधियाँ किसानों को सिखाई जाती हैं।
- **सम्मेलन एवं कार्यशालाएँ** – 2024 में अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में "जैविक एवं प्राकृतिक खेती" पर क्षेत्रीय सम्मेलन

- आयोजित किया गया, जिसमें किसानों के अनुभव और वैज्ञानिक सिफारिशें साझा की गईं।
- **प्रकाशन** – ICAR की खेती पत्रिका में "जैविक खेती का महत्व व प्रमाणीकरण", "गौ-आधारित प्राकृतिक खेती", "स्थानीय संसाधन आधारित खेती" और "प्राकृतिक खेती से सतत कृषि विकास" जैसे अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं।
- **प्रमाणीकरण एवं विपणन सहयोग** – राज्य स्तरीय संस्थाओं के माध्यम से जैविक प्रमाणन और विपणन में सहायता।

5. प्रमुख चुनौतियाँ

- जैविक प्रमाणन प्रक्रिया में समय और लागत।
- शुरुआती वर्षों में उत्पादन में थोड़ी कमी।
- प्राकृतिक खेती में पर्याप्त जैविक संसाधनों की उपलब्धता।
- विपणन चैनलों की कमी और मूल्य स्थिरता का अभाव।

6. समाधान और भविष्य की दिशा

- किसानों के लिए प्रमाणन प्रक्रिया को सरल और कम लागत वाला बनाना।
- सरकारी व निजी क्षेत्र द्वारा जैविक/प्राकृतिक उत्पादों की आपूर्ति श्रृंखला (supply chain) विकसित करना।
- अनुसंधान संस्थानों द्वारा उन्नत जैव उर्वरकों और जैविक कीटनाशकों का विकास।
- किसानों के बीच प्रशिक्षण, जागरूकता और प्रोत्साहन योजनाओं का विस्तार।

7. सार-संक्षेप

जैविक और प्राकृतिक खेती केवल उत्पादन प्रणाली नहीं, बल्कि एक सतत कृषि दर्शन है। ये पद्धतियाँ मिट्टी, जल, वायु और जैव विविधता के संरक्षण के साथ-साथ किसानों की आर्थिक सुरक्षा और उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य की भी गारंटी देती हैं। आज आवश्यकता है कि हम पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों का संतुलन बनाकर इन प्रणालियों को बड़े पैमाने पर अपनाएँ। ICAR और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के सहयोग से आने वाले वर्षों में इन पद्धतियों को अपनाने वाले किसानों की संख्या निश्चित रूप से बढ़ेगी, जिससे भारत "रसायनमुक्त, स्वास्थ्यवर्धक और पर्यावरण-संरक्षक कृषि" के क्षेत्र में अग्रणी बन सकेगा।

■■■

ISSN: 3049-2211

मल्चिंग: सतत कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम

डॉ. मोहम्मद वामिक[1*], श्री अवधेश सिंह चौधरी[2], माजिद खान[3]

[1]सहायक प्राध्यापक, SAST&R, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट

[2]विभागाध्यक्ष, SAST&R, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट

[3]बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि छात्र, SAST&R, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट

परिचय

मल्चिंग वह प्रक्रिया है जिसमें पौधों की जड़ों के चारों ओर मिट्टी की सतह को किसी जैविक या अजैविक सामग्री से ढका जाता है ताकि मिट्टी की गुणवत्ता, नमी और तापमान को नियंत्रित किया जा सके। यह एक कृषि और बागवानी प्रबंधन की महत्वपूर्ण तकनीक है।

मल्चिंग एक आधुनिक कृषि तकनीक है, जिसका उपयोग फसलों की जड़ों के चारों ओर मिट्टी की सतह को ढकने के लिए किया जाता है। इससे न केवल मिट्टी की नमी संरक्षित रहती है, बल्कि खरपतवार नियंत्रण, मिट्टी का तापमान बनाए रखने, और पोषक तत्वों के संरक्षण में भी मदद मिलती है।

मल्चिंग के प्रमुख उद्देश्य-

1. **मिट्टी की नमी बनाए रखना** – मल्च मिट्टी से पानी के वाष्पीकरण को रोकता है।
2. **खरपतवार नियंत्रण** – यह खरपतवार को उगने से रोकता है।
3. **मिट्टी का तापमान संतुलित रखना** – गर्मियों में ठंडा और सर्दियों में गर्म

बनाए रखता है।

ISSN: 3049-2211

4. **मिट्टी का कटाव रोकना** – बारिश या हवा से मिट्टी के कटाव को कम करता है।
5. **पौधों को रोगों से सुरक्षा** – मिट्टी के सीधे संपर्क को कम कर के फसलों को रोगों से बचाता है।

मल्चिंग का उपयोग अनेक प्रकार की फसलों में किया जाता है और इसका प्रभाव बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। सब्ज़ियों की खेती में टमाटर, मिर्च, बैंगन, खीरा, लौकी और भिंडी जैसी फसलें मल्चिंग से विशेष रूप से लाभान्वित होती हैं, क्योंकि इससे मिट्टी में नमी बनी रहती है और खरपतवार नियंत्रण आसान हो जाता है। फलों में स्ट्रॉबेरी, आम, केला और अंगूर की खेती में मल्चिंग का प्रयोग उत्पादन और गुणवत्ता सुधारने के लिए व्यापक रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, फूलों की खेती तथा मसालों की फसलों जैसे हल्दी और अदरक में भी मल्चिंग अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाती है और फसल को अनुकूल वातावरण प्रदान करती है।

मल्चिंग के मुख्य प्रकार

मल्चिंग को मुख्यतः दो श्रेणियों में बाँटा जाता है:

1.जैविक मल्चिंग

ऐसी मल्चिंग जिसमें प्राकृतिक और सड़नशील सामग्री का उपयोग होता हैI यह मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करने और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने में मदद करती है।

उदाहरण:

- पुआल (Straw)
- सूखे पत्ते
- लकड़ी की छीलन (Wood chips)
- हरी घास (Grass clipping)
- गोबर/कम्पोस्ट
- नारियल की भूसी (Coir)

लाभ:

- मिट्टी को पोषण देता है।
- जैविक सामग्री समय के साथ मिट्टी में मिलकर उसकी गुणवत्ता सुधारती है।
- पर्यावरण के अनुकूल होता है।
- खेत में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ती है।

हानियाँ:

- जल्दी सड़ सकता है, बार-बार डालना पड़ता है।
- दीमक और कीट आकर्षित कर सकता है।
- खरपतवार बीज मौजूद होने पर उल्टा असर।

जैविक मल्चिंग के लिए सुझाव:-

- **मल्च की मोटाई :** मल्च की मोटाई 2-3 इंच होनी चाहिए।
- **मल्च की सामग्री :** मल्च की सामग्री को पौधों के आसपास समान रूप से फैलाना चाहिए।
- **मल्च की देखभाल :** मल्च को नियमित रूप से बदलना चाहिए और इसकी देखभाल करनी चाहिए।

जैविक मल्चिंग एक प्रभावी और पर्यावरण अनुकूल तरीका है जो पौधों की वृद्धि और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद करता है।

1.अजैविक मल्चिंग

ऐसी मल्चिंग जिसमें कृत्रिम या गैर-सड़नशील सामग्री का उपयोग होता हैजैसे कि प्लास्टिक, पत्थर, और अन्य कृत्रिम सामग्री। यह मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करने और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने में मदद करती है।

उदाहरण:

- प्लास्टिक फिल्म (Black/Silver/White)
- रबड़ की चादर

- कंकड़ / पत्थर
- भूसे की बनी चटाई

लाभ:

- मिट्टी की नमी को अधिक समय तक बनाए रखता है।
- खरपतवार को अच्छी तरह नियंत्रित करता है
- तापमान नियंत्रित करता है (ब्लैक प्लास्टिक सर्दी में गर्मी बनाए रखता है)
- वर्षा जल का अपवाह रोकता है।

हानियाँ:

- पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है (विशेषकर प्लास्टिक)
- महंगा होता है।
- जैविक खाद नहीं बनता।
- फसल कटाई के बाद हटाना पड़ता है।

मल्चिंग के लिए सरकार द्वारा सब्सिडीअनुदान

मल्चिंग के लिए सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों में सब्सिडी एवं अनुदान योजनाएँ लागू की गई हैं, जो किसानों को आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। यह सब्सिडी राज्यों और योजनाओं के अनुसार अलग-अलग होती है।

बिहार सरकार द्वारा मल्चिंग को बढ़ावा देने के लिए प्लास्टिक, जूट और एग्रो-टेक्सटाइल मल्चिंग की इकाई लागत ₹40,000 प्रति हेक्टेयर निर्धारित की गई है। इसमें किसानों को 50 प्रतिशत तक की सब्सिडी, यानी ₹20,000 प्रति हेक्टेयर, सीधे उनके बैंक खाते में प्रदान की जाती है।

राजस्थान सरकार ने छोटे और सीमान्त किसानों को मल्चिंग के लिए 25 प्रतिशत सब्सिडी देने का प्रावधान किया है, जो अधिकतम 2 हेक्टेयर तक लागू होती है। वहीं अन्य किसानों को 50 प्रतिशत तक की सब्सिडी उपलब्ध कराई जाती है, यह भी अधिकतम 2 हेक्टेयर तक सीमित है। सब्सिडी राशि सीधे किसानों के बैंक खाते में स्थानांतरित की जाती है।

मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस और प्लास्टिक मल्चिंग पर 50 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है। यह अनुदान कुल लागत पर आधारित होता है और किसानों को आधुनिक संरक्षित खेती की ओर प्रेरित करता है।

जैविक और अजैविक मल्चिंग में अंतर –

तुलना का आधार	**जैविक मल्चिंग**	**अजैविक मल्चिंग**
परिभाषा	ऐसी मल्चिंग जिसमें प्राकृतिक, सड़नशील (बायोडिग्रेडेबल) सामग्री का उपयोग होता है।	ऐसी मल्चिंग जिसमें कृत्रिम या गैर-सड़नशील सामग्री का उपयोग किया जाता है।
सामग्री के उदाहरण	पुआल, सूखी पत्तियाँ, गोबर, लकड़ी की छीलन, कटी घास, पेपर, नारियल भूसी आदि।	प्लास्टिक शीट (ब्लैक, सिल्वर), रबड़, पॉलीथीन, पत्थर, कंकड़ आदि।
मिट्टी को पोषण	जैविक मल्च सड़कर मिट्टी को पोषक तत्व देता है।	मिट्टी को कोई पोषण नहीं देता।
पर्यावरण पर प्रभाव	पर्यावरण के लिए अनुकूल, खुद-ब-खुद गल जाता है।	पर्यावरण के लिए हानिकारक (विशेषकर प्लास्टिक), नष्ट करना मुश्किल।
स्थायित्व (Durability)	कम समय तक टिकता है, बार-बार लगाना पड़ सकता है। लंबे	लंबे समय तक टिकता है, एक बार लगाने के बाद महीनों चलता है।
कीमत / लागत	आमतौर पर सस्ती होती है,	स्थानीय सामग्री से मिल जाती है।महंगी

		होती है, खासकर उच्च गुणवत्ता वाली प्लास्टिक मल्च।
खरपतवार नियंत्रण	औसत नियंत्रण करती है।	अत्यधिक प्रभावी रूप से खरपतवार को रोकती है।
स्थापना और हटाना	लगाना आसान, खुद ही मिट्टी में मिल जाती है।	तकनीकी रूप से लगाना पड़ता है, और फसल कटाई के बाद हटाना भी पड़ता है।
मिट्टी की गुणवत्ता पर प्रभाव	मिट्टी की संरचना, नमी और जैविक गुणों को सुधारती है।	केवल नमी और तापमान नियंत्रित करता है, संरचना पर प्रभाव नहीं।

निष्कर्ष-

मल्चिंग एक अत्यंत उपयोगी और प्रभावशाली कृषि तकनीक है, जो न केवल मिट्टी की नमी को बनाए रखती है, बल्कि खरपतवार नियंत्रण, मिट्टी के तापमान को स्थिर रखने और उपज में वृद्धि में भी सहायक होती है।इस तकनीक के माध्यम से किसान कम लागत में बेहतर उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।जैविक मल्चिंग से मिट्टी की गुणवत्ता सुधरती है और यह पर्यावरण के लिए सुरक्षित होती है।वहीं, अजैविक मल्चिंग लंबी अवधि तक प्रभावी रहती है और खरपतवार नियंत्रण में अत्यधिक कारगर होती है।सरकार भी मल्चिंग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत सब्सिडी उपलब्ध करा रही है, जिससे किसानों को आर्थिक सहायता मिल रही है।

■■■

ISSN: 3049-2211

सरसों की फसलों में एफिड (रस चूसने वाला कीट)समस्या: किसानों के लिए एक विस्तृत सुझाव

अभिषेक तिवारी[1], डॉ. अनुज कुमार[2], पुष्कर त्रिपाठी[3] एवं अंश प्रताप सिंह[4] , विकास पाण्डेय[5]

[1,3,4]एम. एस. सी. ए॰ जी॰ आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन ,

[2]सहायक प्राध्यापक, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान[5]

प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ. प्र.),

एफिड सरसों की फसलों के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा पैदा करते हैं, जिससे रस चूसने वाले व्यवहार और वायरल रोगों के संचरण के माध्यम से नुकसान होता है। यह आलेख सरसों की फसलों पर एफिड के प्रभाव, उनकी पहचान, जीवन चक्र और प्रबंधन रणनीतियों की पड़ताल करता है।

हम एफिड प्रतिरोध के लिए आनुवंशिकी दृष्टिकोणों पर चर्चा करते हैं, जिनमें शामिल हैं:

एफिड प्रतिरोधी किस्मों का प्रजनन

मार्कर-असिस्टेड सेलेक्शन

आनुवंशिक अभियांत्रिकी

इसके अलावा, हम एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों पर प्रकाश डालते हैं, जैसे कि:

कृषि तकनीक

जैविक नियंत्रण

चयनात्मक कीटनाशक

प्रारंभिक पहचान

फाइटोसैनिटरी उपाय

एफिड प्रतिरोध के जेनेटिक तंत्र को समझकर और व्यापक प्रबंधन दृष्टिकोण अपना कर, किसान एफिड के नुकसान को कम कर सकते हैं और अपनी फसलों की पैदावार में सुधार कर सकते हैं।

मुख्य शब्द

1. एफिड
2. सरसों की फसलें
3. आनुवंशिक प्रतिरोध
4. एकीकृत कीट प्रबंधन
5. फसल संरक्षण

इन मुख्य शब्दों का उपयोग करके, आप एफिड प्रबंधन और सरसों की फसलों की सुरक्षा से संबंधित जानकारी को आसानी से ढूंढ सकते हैं

परिचय

एफिड छोटे, रस चूसने वाले कीट हैं जो सरसों की फसलों को महत्वपूर्ण नुकसान पहुंचा सकते हैं। अपनी तेजी से प्रजनन करने और पौधों के ऊतकों पर भोजन करने की क्षमता के साथ, एफिड सरसों की बागानों के स्वास्थ्य और उपज को खतरे में डाल सकते हैं। यह आलेख एफिड के प्रभाव और उन्हें प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए सर्वोत्तम अभ्यासों पर प्रकाश डालने का उद्देश्य रखता है।

एफिड की पहचान और जीवन चक्र

एफिड छोटे कीट होते हैं जो रंग में हल्के हरे से लेकर भूरे या काले रंग तक हो सकते हैं। उनके शरीर नाशपाती के आकार के होते हैं और लंबे, पतले एंटीना होते हैं। ये पंख वाले या बिना पंख वाले कीट आमतौर पर पौधों की पत्तियों के नीचे की ओर जमा होते हैं और बड़ी संख्या में दिखाई देते हैं।एफिड का जीवन चक्र तेजी से होता है, जिसमें वयस्क मादाएं संभोग की आवश्यकता के बिना जीवित युवाओं को जन्म देती हैं। यह विशेषता एफिड की आबादी को अनुकूल परिस्थितियों में तेजी से बढ़ने की अनुमति देती है, जैसे कि हल्का मौसम और पर्याप्त भोजन की आपूर्ति।

सरसों की फसलों पर प्रभाव

एफिड सरसों की फसलों को बहुत नुकसान पहुंचा सकते हैं:

एफिड पौधों के फ्लोएम वाहिकाओं से रस चूसते हैं, जिससे पौधों को जरूरी पोषक तत्व नहीं मिल पाते।

इससे पौधों की वृद्धि कमजोर होती है और उपज कम होती है।

एफिड एक चिपचिपा पदार्थ हनीड्यू निकालते हैं, जो अन्य कीटों को आकर्षित करता है और पौधों पर काला फफूंदी का विकास बढ़ावा देता है।

इन प्रभावों से सरसों की फसलों की गुणवत्ता और मात्रा दोनों खराब होती है।

पहचान और निगरानी

एफिड की पहचान और निगरानी करना प्रभावी कीट प्रबंधन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सरसों की पत्तियों के नीचे की ओर एफिड कॉलोनियों की जांच करना एक अनुशंसित अभ्यास है। पीले चिपचिपे जाल या सक्शन सैम्पलर भी खेत में एफिड की उपस्थिति और आबादी के घनत्व का पता लगाने में मदद कर सकते हैं।

यह एक सस्ता और प्रभावी तरीका है जिससे किसान एफिड के संक्रमण का पता लगा सकते हैं और समय पर कार्रवाई कर सकते हैं।

एफिड प्रतिरोध के लिए आनुवंशिक दृष्टिकोण

शोधकर्ताओं ने कुछ जीन और जेनेटिक मार्गों की पहचान की है जो पौधों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, ग्लूकोसिनोलेट-मायरोसिनेज मार्ग सरसों के पौधों में एक महत्वपूर्ण रक्षा तंत्र है। अध्ययनों से पता चलता है कि एफिड इस मार्ग को दबा सकते हैं, जिससे वे पौधे पर सफलतापूर्वक हमला कर सकते हैं। हालांकि, कुछ पौधे कुछ एफिड प्रजातियों के प्रति मजबूत रक्षा प्रतिक्रिया प्रदर्शित करते हैं, जिससे वे जहरीले यौगिकों का उत्पादन करते हैं जो उन्हें रोकते हैं।

इस ज्ञान का उपयोग करके, शोधकर्ता एफिड प्रतिरोधी पौधों की किस्में विकसित कर सकते हैं जो एफिड के हमलों से बेहतर तरीके से निपट सकते हैं।

एफिड प्रतिरोध के लिए प्रजनन

पौधों के प्रजनक विभिन्न तकनीकों का उपयोग करके एफिड-प्रतिरोधी सरसों की किस्में विकसित करने के लिए काम कर रहे हैं:

1. इंट्रोग्रेशन लाइनें: जंगली रिश्तेदारों जैसे ब्रासिका फ्रूटिकुलोसा से एफिड-प्रतिरोधी जीन को खेती वाले सरसों की किस्मों में शामिल करना।

2. मार्कर-असिस्टेड सेलेक्शन: आणविक मार्करों का उपयोग करके एफिड-प्रतिरोधी जीन को ट्रैक करना और प्रतिरोधी पौधों का चयन करना।

3. जेनेटिक इंजीनियरिंग: एफिड प्रतिरोध प्रदान करने वाले जीन, जैसे कि स्नोड्रॉप लेक्टिन प्रोटीन को एन्कोड करने वाले जीन, को सरसों के पौधों में पेश करना।

इन तकनीकों का उपयोग करके, प्रजनक एफिड-प्रतिरोधी सरसों की किस्में विकसित कर सकते हैं जो एफिड के हमलों से बेहतर तरीके से निपट सकती हैं।

ISSN: 3049-2211

चुनौतियाँ और अवसर

सरसों में एफिड प्रतिरोध के जेनेटिक आधार को समझने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन अभी भी कई चुनौतियाँ हैं जिन्हें पार करना होगा। इनमें शामिल हैं:

1. एफिड-पौधे की पारस्परिक क्रियाओं की जटिलता: एफिड-पौधे की पारस्परिक क्रियाएं जटिल होती हैं और कई जेनेटिक और पर्यावरणीय कारकों को शामिल करती हैं।
2. प्रतिरोध की स्थायित्व: एफिड-प्रतिरोधी किस्में विकसित करना जो समय के साथ प्रभावी रहती हैं, बहुत महत्वपूर्ण है।

इन चुनौतियों का सामना करके, शोधकर्ता और प्रजनक अधिक प्रभावी और स्थायी एफिड-प्रतिरोधी सरसों की किस्में विकसित कर सकते हैं।

एफिड प्रतिरोध के जेनेटिक तंत्र को समझकर और उन्नत प्रजनन तकनीकों का उपयोग करके, शोधकर्ता अधिक लचीली सरसों की किस्में विकसित कर सकते हैं। इससे एफिड के प्रभाव को कम किया जा सकता है और खाद्य सुरक्षा में सुधार हो सकता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियाँ

सरसों की फसलों में एफिड को सफलतापूर्वक प्रबंधित करने के लिए, निवारक और उपचारात्मक उपायों का संयोजन अनुशंसित है:

1. **कृषि तकनीक**:
   - फसल चक्र का अभ्यास करें ताकि कीट के जीवन चक्र को बाधित किया जा सके।
   - मैरीगोल्ड या धनिया जैसे साथी पौधों के साथ अंतरफसल करें, जो एफिड को प्राकृतिक रूप से दूर रखते हैं।
2. **जैविक नियंत्रण**:
   - मित्र कीट जैसे लेडीबग, लेसविंग और पैरासिटॉइड वेस्प को प्रोत्साहित करें, जो एफिड की आबादी को नियंत्रित करने में मदद करते हैं।
3. **चयनात्मक कीटनाशक**:
   - गंभीर संक्रमण के मामलों में, चयनात्मक कीटनाशकों का उपयोग उपचारात्मक उपाय के रूप में किया जा सकता है।
   - लाभकारी कीटों के लिए कम हानिकारक कीटनाशकों का चयन करें और अनुशंसित खुराक और अनुप्रयोग आवृत्ति का पालन करें।
4. **प्रारंभिक पहचान और हस्तक्षेप**:
   - एफिड आबादी की नियमित निगरानी करें ताकि शुरुआती चरण में संक्रमण का पता लगाया जा सके और स्थिति खराब होने से पहले तेजी से कार्रवाई की जा सके।
5. **फाइटोसैनिटरी उपाय**:
   - अच्छी क्षेत्र स्वच्छता का अभ्यास करें और रोगग्रस्त पौधों के मलबे और खरपतवारों को हटा दें जो एफिड को आश्रय दे सकते हैं।
   - इससे इन कीटों के लिए संभावित प्रजनन स्थलों को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

एफिड सरसों की फसलों के लिए महत्वपूर्ण खतरा पैदा कर सकते हैं, न केवल उपज की हानि के संदर्भ में, बल्कि रोग संचरण की संभावना के मामले में भी। एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों को अपनाकर, किसान एफिड की आबादी को प्रभावी ढंग से प्रबंधित कर सकते हैं और उनके प्रभाव को कम कर सकते हैं। समय पर पहचान, फसल चक्र, जैविक नियंत्रण, और सावधानी से चयनित कीटनाशक एक व्यापक दृष्टिकोण का हिस्सा हैं जो सरसों की फसलों को इन छोटे लेकिन विनाशकारी कीटों से होने वाले नुकसान से बचाने में मदद करेगा।

ISSN: 3049-2211

वास्तु और कृषि: समृद्धि की धरती

गौरव एस. सिंघवी
वैज्ञानिक वास्तु परामर्शदाता एवं आंतरिक वास्तुकला डिज़ाइनर, उदयपुर

भूमिका

वास्तुशास्त्र, जो मानव-निर्मित वातावरण में ऊर्जा संतुलन और प्राकृतिक तत्त्वों की अनुकूलता पर ध्यान देता है, कृषि जगत में भी अद्भुत रूप से प्रासंगिक है। खेत-खलिहान, जलनिकाय, गोबर गोदाम, अवशिष्ट कृषि जैविक संसाधन, और उपकरणों को वास्तु दृष्टिकोण से व्यवस्थित करने से उपज, भूमि की उर्वरता तथा किसान की समृद्धि में वास्तविक अंतर आता है।

कृषि भूमि हेतु प्रमुख वास्तु नियम

- **भूमि का आकार**: आयताकार या चौकोर होना चाहिए। दक्षिण-पूर्व या दक्षिण-पश्चिम में कोई भी कटाव वर्जित है।
- **ढलान की दिशा**: भूमि का ढलान उत्तर या पूर्व दिशा में होना चाहिए। दक्षिण/पश्चिम ढलान से खेती में घाटा होता है।
- **भूमि समतलीकरण**: भूखंड बहुस्तरीय नहीं होना चाहिए। यदि हो तो ढलान उत्तर या पूर्व की तरफ रखे।
- **सड़क स्थिति**: कृषि भूमि से दक्षिण दिशा में सड़क का संपर्क और प्रवेश अशुभ और अवांछनीय माना जाता है।
- **संरक्षण (खेत परिसर की दीवार)**: दक्षिण और पश्चिम की ओर ऊँची, मजबूत दीवार बनाएं (10–20 फीट लंबी, लगभग 6 फीट ऊँची) क्योंकि ये दोनों दिशाएं स्थूल और भारयुक्त मानी जाती हैं; अतः इन ओर ऊँची एवं सुदृढ़ दीवारों का निर्माण करने से ऊर्जा संतुलन बनाया रखा जा सकता हैं और नकारात्मक प्रभावों की रोकथाम की जा सकती हैं।
- **ऊँचे पेड़**: भूमि के दक्षिण या पश्चिम किनारों पर ऊँचे पेड़ लगाने से लाभकारी प्रभाव माना जाता है।
- **बीज बोने की दिशा**: बीज बोते समय पूर्व–पश्चिम दिशा में बुवाई बेहतर प्रकाश और विकास हेतु उपयुक्त होती है।

जल संरचनाएं एवं स्रोत के वास्तु अनुसार स्थान

- **कुएँ/बोरिंग/टैंक:** खेतों में जल स्रोत, तालाब, कुआँ अथवा जलाशय उत्तर या पूर्व दिशा, विशेषतः ईशान कोण (उत्तर-पूर्व) में बनाना चाहिए, क्योंकि यह दिशा जल तत्त्व की प्रतिनिधि है और इससे वर्षा जल संग्रह, जल-स्तर में सुधार और सकारात्मक ऊर्जा मिलती है साथ ही समृद्धि और मानसिक शुद्धता में वृद्धि होती है।

ISSN: 3049-2211

- **जल निकासी:** जल निकासी दक्षिण से उत्तर की ओर बनाएं ताकि ऊर्जा प्रवाह बना रहे।
- **वर्जित क्षेत्र:** कुआँ दक्षिण-पश्चिम, दक्षिण-पूर्व या उत्तर-पश्चिम में नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे वित्तीय/स्वास्थ्य नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं।

भवन, उपकरण, गोबर गोदाम, सौर ऊर्जा पैनल्स और श्रमिक व्यवस्थाएं

- **फार्म हाउस:** फार्म हाउस या भवन का निर्माण दक्षिण-पश्चिम दिशा में करना उचित रहता है, क्योंकि यह दिशा स्थायित्व, सुरक्षा एवं नियंत्रण की प्रतीक मानी जाती है।
- **कर्मचारी आवास/झोंपड़ी:** कर्मचारी आवास या झोंपड़ियों का निर्माण दक्षिण-पूर्व या पश्चिम दिशा में करना उत्तम माना जाता है, क्योंकि ये दिशाएं सहायक कर्मशीलता, कार्य-निष्ठा और अनुशासन को प्रोत्साहित करती हैं।
- **उपकरणों की दिशा:** भारी कृषि यंत्रों को दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में रखने से स्थायित्व और संतुलन बना रहता है, वाहनों को उत्तर या उत्तर-पश्चिम में पार्क करने से सुगमता और गतिशीलता बनी रहती है, जबकि ईशान कोण (उत्तर-पूर्व) में उपकरण रखने से सकारात्मक ऊर्जा प्रवाह बाधित होता है।
- **गोबर गोदाम, कम्पोस्टिंग क्षेत्र :** गोबर गोदाम, कम्पोस्टिंग क्षेत्र बायोगैस यूनिट आदि दक्षिण-पश्चिम में स्थापित करने चाहिए, जिससे भूमि का संतुलन बना रहता है और संरचनात्मक स्थायित्व प्राप्त होता है। मौसम-प्रभाव का न्यूनतम प्रभाव रहता है और कार्यक्षेत्र सुरक्षित एवं संरक्षित रहता है।
- **सौर ऊर्जा पैनल्स एवं शेड संरचना:** यदि शेड या सौर पैनल पूरब-पश्चिम दिशा में व्यवस्थित हों, तो खेत की ऊर्जा आवश्यकता स्वच्छ ऊर्जा स्रोत से पूरी की जा सकती है।

अनुष्ठान व शुभ दिवस

- **बीज बोने का शुभ दिन:** मंगलवार और शनिवार से बचना चाहिए; गायत्री मंत्र, सूर्य मंत्र का उच्चारण लाभप्रद होता है। मंगलवार और शनिवार को बीज बोना अशुभ माना जाता है, जबकि बीजारोपण के समय गायत्री मंत्र व सूर्य मंत्र का उच्चारण सकारात्मक ऊर्जा, जैविक संतुलन और फसल की वृद्धि के लिए लाभकारी होता है।
- **अग्नि पूजन (गड्ढा):** भूमि की दक्षिण-पूर्व दिशा में अग्नि पूजन करना शुभ माना जाता है क्योंकि अग्नि तत्त्व की अधिष्ठात्री दिशा दक्षिण-पूर्व मानी जाती है। फसल का पहला बंडल अर्पण करना लाभदायक होता है।अमावस्या विधि: अमावस्या के दिन खेत प्रवेश द्वार पर नींबू-मिर्च बांधना अशुभ शक्तियों से सुरक्षा हेतु प्रयोगीय है।

मिट्टी से सम्बद्ध वास्तु दिशा निर्देश

- **नमी युक्त मिट्टी (Clay Soil)**: यदि खेत की मिट्टी में अधिक नमी रहती है, तो उत्तर या उत्तर-पूर्व दिशा में जल स्रोत रखना और दक्षिण-पश्चिम दिशा में फसल भंडारण करना उपयुक्त माना जाता है।
- **रेतीली या हल्की मिट्टी (Sandy Soil):** ऐसे खेतों में हवा के बहाव के लिए उत्तर-पश्चिम दिशा को खुला छोड़ना लाभकारी होता है, जिससे मिट्टी का ताप संतुलित रहता है।
- **बीज बुवाई:** उत्तर-पश्चिम दिशा में बीज बुवाई करें. यह दिशा वायु तत्व की होती है, जिससे फसल में वायु-संचार बेहतर होता है, रोगों की आशंका घटती है और पौधों की वृद्धि बेहतर होती है।
- **खेत की नमी और उर्वरता के अनुसार दिशा चयन** – भूमि की संरचना और जलधारण क्षमता के आधार पर कृषि क्रियाओं की दिशा तय करना वास्तु के अनुसार उत्पादन वृद्धि में सहायक होता है।

वास्तु + कृषि नीति: एक सामंजस्य

केंद्र सरकार द्वारा लागू की गई पीएम-किसान, फसल बीमा योजना, एमआईएस-एस, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई) और कृषोन्नति योजना जैसी नीतियाँ किसानों को वित्तीय सहायता, बीमा सुरक्षा, जोखिम प्रबंधन और कृषि अवसंरचना सुदृढ़ीकरण का लाभ प्रदान कर रही हैं। यदि इन योजनाओं को पारंपरिक भारतीय वास्तुशास्त्र और भू-ऊर्जा सिद्धांतों के साथ एकीकृत किया जाए, तो यह कृषि क्षेत्र में दीर्घकालिक उत्पादकता और प्राकृतिक संतुलन को सुनिश्चित किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, किसानों को दिशा और ढलान के अनुरूप खेत का उपयोग करने, जल स्रोतों की स्थापना तथा भंडारण संरचनाओं की योजना वास्तु अनुसार बनाने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। माइक्रो इरिगेशन (MIS) प्रणाली को खेत की संरचना के अनुसार लगाकर जल दक्षता और पौध विकास को बढ़ाया जा सकता है। इसी

प्रकार, बीमा योजनाओं में भू-ऊर्जा और भूमि की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए जोखिम मूल्यांकन किया जा सकता है, जिससे क्षति का अनुमान अधिक सटीक हो सके। कृषोन्नति योजना के अंतर्गत जैविक खेती को दिशानुसार फसल चक्र और पारंपरिक मिट्टी विश्लेषण से जोड़ा जा सकता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता दोनों में वृद्धि हो। सरकार यदि वास्तु-अनुकूल कृषि संरचनाओं जैसे फार्म हाउस, गोदाम और जल टैंकों के निर्माण के लिए विशेष प्रोत्साहन अथवा सब्सिडी प्रदान करे, तो यह किसानों को प्राकृतिक और आर्थिक, दोनों ही दृष्टियों से स्थिरता प्रदान करने वाला एक दूरदर्शी कदम सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार, पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक नीतियों का यह एकीकृत दृष्टिकोण, कृषि को टिकाऊ, समृद्ध और संतुलित भविष्य की ओर ले जा सकता है।

वास्तु के माध्यम से लागत में कमी

- सिंचाई लागत, उर्वरक और कीटनाशक प्रयोग पर नियंत्रण होता है; जल संचयन और जैविक गोबर प्रबंधन से रासायनिक इनपुट्स में कमी आती है।
- ऊर्जा बचत: कार्यशालाओं व उपकरणों के वास्तु नियोजन से विद्युत/फॉसिल ईंधन खर्च में कमी संभव होती है।

निष्कर्ष

वास्तुशास्त्र केवल भवनों की दिशा, स्थल या कलाएँ नहीं सिखाता बल्कि प्रकृति, विज्ञान और मानव प्रयास के सामंजस्य का मार्गदर्शन करता है। यदि किसान अपनी भूमि की दिशा, जल प्रवाह, मिट्टी और संरचनात्मक व्यवस्था वास्तु के सिद्धांतों के अनुरूप करता है, तो कृषि उत्पादकता में सुधार और आर्थिक समृद्धि संभव है। वास्तुशास्त्र और कृषि का संयोजन केवल पुरातन ऊर्जा संरेखण नहीं, बल्कि यह भूमि, जल, प्रकाश, और मानव गतिविधियों के तार्किक संकल्पनाओं को जोड़कर कृषि समृद्धि, ग्रामीण संवृद्धि और पर्यावरण संतुलन की दिशा में कदम बढ़ाने की एक वैज्ञानिक पहल है।

■■■

ISSN: 3049-2211

पशुओं एवं मुर्गियों में विटामिन ए का महत्व

अंकुर द्विवेदी, अंकित कुमार तिवारी

शोधार्थी, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान , महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (मध्य प्रदेश)

संदीप कुमार

केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा

भूमिका

विटामिन ए एक वसा में घुलनशील विटामिन है और वह जानवरों के लिए आवश्यक पोषक तत्व है । विटामिन ए अच्छी सेहत व आंखों की ज्योति के लिए सबसे महत्वपूर्ण विटामिन है विटामिन ए को हम संक्रमण रोधी विटामिन भी कहते हैं । विटामिन ए जंतुओं द्वारा नहीं बनाया जा सकता है इसलिए विटामिन ए की जरूरत को पूर्ण करने के लिए हमें खाद्य पदार्थों पर निर्भर होना होता है। रेटिनल रेटिनांल और 4) ए - तरह के कैरोटेनांइड विटामिन ए के विभिन्न प्रकार हैं विटामिन आंखों में देखने के लिए अत्यंत आवश्यक (रेटिनल रेटिनांलहै। यह विटामिन शरीर में अनेक अंगों जैसे त्वचाग्रंथि दांत मसूड़े ,नाखून ,बाल , और हड्डी को मसूड़े और हड्डी को समानरुप में बनाए रखने में मदद करता है। साथ ही यह बीमारी से बचने के काम आता है।

विटामिन - ए के स्रोत -

दूध मक्खनकद्दू हरी पत्तेदार , लीवर तेल टमाटर ,अंडा गाजर , ,साग ब्रोकली, कीनू खुबानी चुकंदर ,पपीता, सब्जियां केला अमरूद अनाज पनीर गिरीदार फल मिर्च राजमा मांस आम सरसों धनिया चीकू मटर कद्दू लाल मिर्च शलजम शकरकंद तरबूज मकई के दाने पीले या नारंगी रंग के फल कांड लिवर आयल फिश मील मीट आदि, ।

विटामिन ए क्यों जरूरी -है।

1. शरीर की वृद्धि के लिए तथा इसकी कमी से भूख कम तथा पशु दुबला रहता है।
2. आंख की दृष्टि के लिए
3. हड्डियों की वृद्धि के लिए
4. त्वचा को कोमल और मजबूत बनाने के लिए
5. भ्रूण के विकास के लिए विटामिन ए की कमी से श्वास नली में संक्रमण अधिक रहता है।
6. विटामिन ए की कमी से पथरी बनने की संभावना अधिक रहती है।
7. विटामिन ए की कमी से नर मादा दोनों की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है।
8. शुक्राणुओं का बनना है। एवं अंडाणुओं का बनना प्रभावित होता है।
9. विटामिन ए की कमी से रिटेंशन ऑफ प्लेसेंटा गर्भपात की संभावना बनी रहती है।

ISSN: 3049-2211

शारीरिक क्रियाओं में विटामिन - ए की भूमिका-

विटामिन ए हमारे शरीर की कोशिकाओं और ऊतकों को सामान्य रखने में मदद करता है। विशेषतआंखें ,पाचन तंत्र श्वसन तंत्र : और त्वचा की कोशिकाएं विटामिन ए की कमी होने पर इन विशेष उसको और कोशिकाओं का रखरखाव नहीं हो पाता तथा यह छोटे हो जाते हैं।

पशुओ एवं मुर्गियों के स्वस्थ और प्रजनन में विटामिन - ए का उपयोग -

1. यह भ्रूण के समुचित विकास के लिए बहुत अच्छा माना जाता है।
2. त्वचा के लिए स्वास्थ्यवर्धक होता है।
3. रक्त में कैल्शियम का स्तर बनाए रखने और हड्डियों के संवर्धन के लिए आवश्यक है।
4. हड्डियों, दांत और उतकों के रखरखाव के लिए आवश्यक है।
5. ऊर्जा पैदा करने के लिए सभी कोशिकाओं को इसकी जरूरत पड़ती है।

श्वशन- ए की भूमिका - मूत्र तंत्र व त्वचा में विटामिन ,

मानव और पशु दोनों का ही दैनिक जीवन में बहुत सारे कार्यों को करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति के लिए हम विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं जिनके प्रमुख अवयव होते हैं और ,प्रोटीन खनिज लवण, वसा, कार्बोहाइड्रेट - विटामिन का मतलब किसी ऐसे जैविक और अति महत्वपूर्ण ! विटामिन पोषक पदार्थ सेहै। जो हमें बेहद सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होता है। विटामिन दो तरह के होते हैं जल में घुलनशील और वसा में घुलनशील - के वसा में - ई विटामिन - डी विटामिन - ए विटामिन - विटामिन घुलनशील जबकि विटामिन बी कॉम्प्लेक्स कुछ को एंजाइम का समूह होताहै। इसीलिए लेख के द्वारा विटामिन ए की पशुओं व मुर्गियों में आवश्यक महत्ता इसकी कमी व अधिकता के कारण स्वास्थ्य व प्रजनन पर होने वाले प्रभाव से संबंधित जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

अवशोषण होने से निमोनिया का खतरा बढ़ जाता है। मूत्र तंत्र में पावरी की संभावना बढ़ जाती है। विटामिन ए की कमी से त्वचा भी शुष्क हो जाती है। और ज्यादा दिनों बाद मछलियों की खाल की तरह से दिखने लगती है।

आंखों की सामान्य पुष्टि के लिए आवश्यक -

रतौंधी के अलावा आंखों की आंसू की ग्रंथ की कोशिकाओं का हास्य या क्षरण होने से आंसू नहीं बन पाते और आंखें सूख जाती है। आंखों के सूखने के कारण घाव भी बन जाते हैं और बाद में पशु अंधा हो जाता।

मुर्गियों में विटामिन ए का महत्व -

विटामिन - ए की कमी के कारण मुर्गियों को रतौंधी रोग हो जाता है। प्रभावित मुर्गियों को आंख से दिखाई नहीं पड़ता है। तथा आंखों में माडा पड़ जाता है। और आंखें सफेद हो जाती हैं को कुक्कुटो में विटामिन ए की कमी से हड्डियों में सूजन (गाउट) रोग की संभावना बढ़ जाती है। इसके अलावा अंडों का उत्पादन कम हो जाता है। अंडों को सेने के बाद चूजे काम आते हैं चूजो का विकास रुक जाता है। और कुक्कुटो के पंखों का विकास उचित तरह से नहीं हो पाता है।

प्रजनन में विटामिन ए का महत्व -

विटामिन - ए पशुओं के प्रजनन में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मादा पशुओं के गर्भ काल के दौरान और गर्भ में पल रहे शिशु के बीच जरायूनाल या गर्भनाल (प्लेसेंटा) से पोषक तत्वों का खून के माध्यम से आदान-प्रदान होता है। विटामिन ए की कमी से गर्भनाल की कोशिकाओं का क्षरण हो जाता है। तथा कई बार जन्म के समय से पहले ही माता के गर्भ में शिशु की मृत्यु हो जाती है। विटामिन - ए की कमी से नर पशुओं के वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या कम हो जाती तथा प्रजनन क्षमता घट जाती है। गर्भकाल के समय या बचपन में मानसिक परेशानी हो सकती है। जैसे सर के हड्डियों के ऊपर मस्तिष्क के एक भाग का आ जाना।

विटामिन ए की कमी के बचाव -

विटामिन ए की कमी को दूर करने हेतु पशुपालक अपने - सं, पशुओं और कुक्कुटो विटामिन के के स्रोत जैसे हरा चारातुलित आहार फिशमील तथा मील मीट आहार के साथ मिला कर दें।

विटामिन ए की विषाक्ता -

सामान्यतविटामिन ए विषाक्ता पशुओं में नहीं होती क्योंकि : यह जिगर में जमा हो जाताहै। किंतु यदि विटामिन ए युक्त दवाईयों या - फिश मील तथा मीट मील को आहार में जरूरत या अधिक मात्रा में मिलाया जाए तो विटामिन ए विषाक्ता हो सकतीहै। शरीर में बहुत अधिक विटामिन ए हानिकारक प्रभाव का कारण बनता है। गर्भ के दौरान अत्यधिक विटामिन ए पेट में विकसित हो रहे बच्चों को नुकसान पहुंचा सकता है। विटामिन हड्डियों की ,ए के उच्च स्तर से जन्म दोष - थकावट जिगर और ,देखने में समस्या ,कमजोरी हड्डी और जोड़ों में दर्द केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की समस्या हो सकती है।

■■■

ISSN: 3049-2211

गाजर घास (पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस) एक विनाशकारी खरपतवार

रामकुमार निरंजन[1*], बालकृष्ण सिंह[2], मुनेश कुमार शुक्ला[3], राम केवल[1]

[1]कीट विज्ञान एवं कृषि जंतु विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.)

[2]दुग्ध विज्ञान एवं खाद्य प्रौद्योगिकी विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.)

[3]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.)

परिचय

गाजर घास (*पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस*) एस्टेरेसी कुल का एक आक्रामक खरपतवार है, जिसे आमतौर पर कांग्रेस घास या गाजर घास के नाम से जाना जाता है। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं और पत्तियाँ हरे रंग की, जो देखने में गाजर के पौधे से मिलती-जुलती हैं। यह खरपतवार अत्यंत तेजी से फैलता है और नियंत्रित करना कठिन होने के कारण किसानों के लिए एक गंभीर समस्या बन गया है। भारत के लगभग सभी कृषि क्षेत्रों में इसका प्रकोप पाया जाता है, जिससे फसल उत्पादन में कमी आती है और यह किसानों की बड़ी चिंता का कारण है। यह पौधा विभिन्न प्रकार की जलवायु में पनपने की क्षमता रखता है तथा मिट्टी की उपयुक्त परिस्थितियों में इसकी ऊँचाई 2 मीटर तक पहुँच सकती है। गाजर घास के पौधे पर छोटे-छोटे रोएँदार रेशे पाए जाते हैं, जो मनुष्य की त्वचा के संपर्क में आने पर खुजली और कई प्रकार की एलर्जिक बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। इसके परागकण हवा के माध्यम से आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक फैलते हैं, जिसके कारण यह तेजी से नए क्षेत्रों में फैलता है।

यह खरपतवार न केवल कृषि उत्पादकता और पौधों की जैव विविधता को घटाता है, बल्कि मानव एवं पशुओं में त्वचा संबंधी रोगों और एलर्जी का कारण भी बनता है। वर्तमान समय में इसका प्रकोप भारत, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, वियतनाम, ताइवान, इज़राइल, अफ्रीका (मोज़ाम्बिक, इथियोपिया, केन्या, दक्षिण अफ्रीका, सोमालिया आदि), ऑस्ट्रेलिया और प्रशांत क्षेत्र तक फैल चुका है। भारत में इसकी पहचान सर्वप्रथम 1951 में पुणे (महाराष्ट्र) में हुई थी। तब से इसका प्रसार अत्यधिक तेजी से हुआ है और यह एक विश्वस्तरीय समस्या बनकर कृषि, मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के लिए चुनौती उत्पन्न कर रहा है।

गाजर घास के हानिकारक प्रभाव

गाजर घास न केवल कृषि फसलों की उत्पादकता को प्रभावित करती है, बल्कि मानव स्वास्थ्य, पशुओं और पर्यावरण के लिए भी चुनौतीपूर्ण है। इसके कारण त्वचा रोग, श्वसन संबंधी समस्याएँ और अनेक प्रकार की एलर्जी देखी जाती हैं। इस लेख में इसके फसलों और मनुष्यों पर हानिकारक प्रभाव का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है।

ISSN: 3049-2211

फसलों पर गाजर घास के हानिकारक प्रभाव

(क) फसल उत्पादन में कमी

गाजर घास अत्यंत प्रतिस्पर्धी खरपतवार है। यह मिट्टी के पोषक तत्वों, पानी और सूर्य के प्रकाश के लिए फसलों से प्रतिस्पर्धा करती है। इसके कारण अनाज, तिलहन, दलहन और बागवानी फसलों की वृद्धि और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अनुसंधानों से यह प्रमाणित हुआ है कि जहां गाजर घास का प्रकोप अधिक होता है, वहाँ फसलों की उत्पादकता में 30–70% तक की गिरावट आ सकती है।

(ख) एलिलोपैथिक प्रभाव

गाजर घास अपनी जड़ों, पत्तियों और फूलों से **एलिलोकेमिकल्स** (जैसे पार्थेनिन, हेस्पेरिटिन आदि) छोड़ती है, जो अन्य फसलों की अंकुरण क्षमता, जड़ विकास और वृद्धि को बाधित करते हैं। यह एलिलोपैथिक प्रभाव मिट्टी की उर्वरता को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, गेहूँ, धान, अरहर, कपास और सब्ज़ियों में अंकुरण दर तथा पौधों की लंबाई पर इसका दुष्प्रभाव देखा गया है।

(ग) भूमि की गुणवत्ता में गिरावट

गाजर घास का जैविक अपघटन मिट्टी की संरचना को प्रभावित करता है। इसके कारण सूक्ष्म पोषक तत्वों का असंतुलन उत्पन्न हो जाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता घटती है और फसल उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

(घ) पशुओं के चारे पर प्रभाव

गाजर घास चरागाहों में तेजी से फैलकर हरी घास को समाप्त कर देती है। इससे पशुओं के लिए उपलब्ध चारे की मात्रा घट जाती है। इसके अतिरिक्त, यदि पशु गलती से इसे खा लेते हैं तो इससे उन्हें विषाक्तता हो सकती है, जो दूध उत्पादन और पशु स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालती है।

(ङ) जैव विविधता में कमी

गाजर घास स्थानीय घासों और पौधों को विस्थापित कर देती है। इससे कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में प्राकृतिक परागणकर्ता, लाभकारी कीट एवं सूक्ष्मजीवों की संख्या घट जाती है, जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादन पर अप्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक असर पड़ता है।

गाजर घास की रोकथाम के उपाय

गाजर घास का फैलाव तेज और नियंत्रित करना कठिन है, इसलिए इसके **समन्वित प्रबंधन** की आवश्यकता होती है।

1. यांत्रिक नियंत्रण

- हाथ से उखाड़ना (खासतौर पर फूल आने से पहले)
- घास काटने वाली मशीन से बार-बार कटाई
- पौधों को जड़ सहित नष्ट करना ताकि दोबारा न उगें

2. सांस्कृतिक नियंत्रण

- खेत में उचित फसल चक्र अपनाना (दलहन, तिलहन और कवर क्रॉप का प्रयोग)
- बहुपयोगी पौधों जैसे नेपियर घास, बरसीम, और सूरजमुखी की खेती, जो गाजर घास को दबा देते हैं
- जैविक खाद और गहरी जुताई से गाजर घास का अंकुरण कम होता है

3. रासायनिक नियंत्रण (Chemical control)

- 2,4-डी (डाइमिथाइलमाइन लवण) @ 0.5–1.0 किग्रा प्रति वर्ष/हेक्टेयर
- ग्लाइफोसेट @ 1.0–1.5 किग्रा प्रति वर्ष/हेक्टेयर
- मेट्रिबुज़िन या एट्राज़िन जैसे शाकनाशी का प्रयोग ध्यान रहे कि रसायन का प्रयोग पर्यावरण और मनुष्यों के लिए सुरक्षित ढंग से ही किया जाए।

4. जैविक नियंत्रण

- *ज़ाइगोग्रामा बाइकोलोराटा* नामक भृंग गाजर घास की पत्तियाँ खाकर उसे नष्ट करता है।
- *सर्कोस्पोरा पार्थेनोफिला* नामक फफूंद इसके पौधों पर रोग उत्पन्न करती है।
- जैविक नियंत्रण दीर्घकालिक और पर्यावरण हितैषी उपाय है।

5. सामुदायिक सहभागिता

- गाँव/क्षेत्र स्तर पर गाजर घास उन्मूलन अभियान
- जागरूकता कार्यक्रम, ताकि किसान समय पर इसे पहचानकर नष्ट कर सकें
- गाजर घास को कम्पोस्ट या ग्रीन मैन्योर में बदलना, ताकि आंशिक उपयोग भी हो सके

2. मनुष्यों पर गाजर घास के हानिकारक प्रभाव

(क) त्वचा संबंधी रोग

गाजर घास के पौधे पर सूक्ष्म रोएँदार रेशे पाए जाते हैं जो मानव त्वचा के संपर्क में आने पर खुजली, चकत्ते, लालिमा और जलन उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा इसके परागकण भी त्वचा रोग का कारण बनते हैं। लंबे समय तक संपर्क रहने पर यह रोग क्रॉनिक डर्मेटाइटिस का रूप ले सकता है।

ISSN: 3049-2211

(ख) श्वसन संबंधी समस्याएँ

गाजर घास के परागकण अत्यधिक सूक्ष्म और हल्के होते हैं, जो वायु में तेजी से फैलते हैं। इन्हें साँस के साथ अंदर लेने पर छींक, नाक बहना, आँखों से पानी आना, दमा और एलर्जिक राइनाइटिस जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। भारत के शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में इस समस्या से हजारों लोग प्रभावित हो रहे हैं।

(ग) एलर्जी और बुखार

कई शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि गाजर घास के संपर्क से पार्थेनियम एलर्जिक नामक स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें रोगी को बुखार, थकान, सिरदर्द और शारीरिक अस्वस्थता महसूस होती है।

(घ) आँतों और पाचन तंत्र पर प्रभाव

कुछ अध्ययनों में यह पाया गया है कि गाजर घास के रसायन (पार्थेनिन) का अनजाने में सेवन (प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से) पाचन तंत्र में अल्सर और गैस्ट्रिक समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है।

(ङ) आँखों और बालों पर दुष्प्रभाव

गाजर घास के परागकण आँखों में सूजन, लालिमा और कंजक्टिवाइटिस का कारण बनते हैं। इसके अलावा, त्वचा रोग से जुड़े मामलों में बाल झड़ने की समस्या भी देखी गई है।

(च) मानसिक एवं सामाजिक प्रभाव

लगातार खुजली, श्वसन रोग और अस्वस्थता के कारण व्यक्ति की कार्यक्षमता घट जाती है, जिससे उसकी आजीविका प्रभावित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह किसानों के लिए आर्थिक और सामाजिक बोझ का कारण बन चुका है।

रोकथाम के उपाय

(क) व्यक्तिगत स्तर पर

- खेतों या खुले क्षेत्रों में काम करते समय दस्ताने, मास्क और फुल बाजू के कपड़े पहनें।
- गाजर घास के पौधों को छूने के बाद साबुन से हाथ-पैर धोएँ।
- यदि एलर्जी हो जाए तो तुरंत एंटीहिस्टामिनिक क्रीम या दवा लें और चिकित्सक से संपर्क करें।

(ख) चिकित्सा संबंधी उपाय

- **त्वचा रोग**- डर्मेटोलॉजिस्ट द्वारा दी गई क्रीम/लोशन का प्रयोग।
- **श्वसन रोग**- इनहेलर, एंटी-एलर्जिक दवा और स्टेरॉयड स्प्रे का प्रयोग।
- नियमित स्वास्थ्य जांच, खासकर उन लोगों के लिए जो गाजर घास-प्रभावित क्षेत्रों में रहते हैं।

(ग) पर्यावरणीय उपाय

- गाजर घास को फूल आने से पहले उखाड़ देना।
- सामूहिक स्तर पर गाजर घास उन्मूलन अभियान चलाना।
- जैविक नियंत्रण (*ज़ाइगोग्रामा बाइकोलोराटा* नामक भृंग) का प्रयोग कर इसके फैलाव को रोकना।

(घ) जन-जागरूकता

- किसानों और ग्रामीण लोगों को गाजर घास के खतरों और रोकथाम के बारे में जानकारी देना।
- स्कूल, पंचायत और कृषि विभाग स्तर पर जागरूकता अभियान।

3. गाजर घास का वैश्विक परिप्रेक्ष्य

गाजर घास का प्रकोप केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विश्व स्तर पर समस्या बन चुका है। अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, एशिया और प्रशांत क्षेत्रों में यह खरपतवार फसलों, चरागाहों और मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रहा है। इसे विश्व का सातवाँ सबसे विनाशकारी खरपतवार माना गया है।

निष्कर्ष

गाजर घास एक आक्रामक और विनाशकारी खरपतवार है, जिसने भारत सहित अनेक देशों में कृषि उत्पादन, जैव विविधता, मानव स्वास्थ्य और पशुपालन के क्षेत्र में गंभीर समस्याएँ उत्पन्न की हैं। फसलों में यह पोषक तत्वों और संसाधनों की प्रतिस्पर्धा से उत्पादकता घटाती है, जबकि मनुष्यों में यह त्वचा रोग, श्वसन संबंधी समस्याएँ, एलर्जी और अन्य स्वास्थ्य विकारों का कारण बनती है। इसके बढ़ते प्रकोप को देखते हुए इसके समन्वित प्रबंधन की आवश्यकता है। जैविक नियंत्रण (जैसे *ज़ाइगोग्रामा बाइकोलोराटा* नामक भृंग), यांत्रिक नियंत्रण, फसल चक्र परिवर्तन और जनजागरूकता से ही इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। यदि समय रहते इसके प्रसार पर नियंत्रण नहीं किया गया, तो यह भविष्य में कृषि और मानव स्वास्थ्य दोनों के लिए और भी बड़ी समस्या बन सकता है।

गाजर घास और उसके मनुष्यों पर हानिकारक प्रभाव

ISSN: 3049-2211

शून्य बजट प्राकृतिक खेती किसान की समृद्धि का मार्ग

शुभ लक्ष्मी[1], बाल कृष्ण[2]

[1]सहायक प्रोफेसर-सह-कनीय वैज्ञानिक, कृषि अर्थशास्त्र, बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर

[2]सहायक प्रोफेसर-सह-कनीय वैज्ञानिक, पादप प्रजनन - आनुवंशिकी, बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर

एनएसएसओ के आंकड़ों के अनुसार उर्वरकों और रासायनिक कीटनाशकों जैसे कृषि इनपुट की बढ़ी हुई लागत 50 प्रतिशत भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण है। वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई के अंधाधुंध प्रयोग को कम करना है। कृषि की लागत कम करना, कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार करना और प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाना है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती देशी गायों द्वारा उत्पादित गौ-उत्पादों (गोमूत्र, गोबर) पर आधारित प्राकृतिक खेती है। सभी कृषि आदान किसान अपने खेत से ही तैयार करते हैं, कोई भी आदान बाजार से नहीं खरीदा जाता। इसलिए उसे सीधे तौर पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है।जिसके कारण इसे शून्य बजट आधारित खेती कहा जाता है। 2021 *में, द वर्ल्ड ऑफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर ने* 190 *देशों में जैविक खेती की सूचना दी, जिसमें* 74.9 *मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि (कुल कृषि भूमि का* 1.6 *प्रतिशत) और अतिरिक्त* 30.0 *मिलियन हेक्टेयर जंगली फसल के लिए समर्पित है। सबसे बड़े योगदानकर्ताओं में, ऑस्ट्रेलिया* 35.7 *मिलियन हेक्टेयर के साथ अग्रणी है, इसके बाद अर्जेंटीना (*4.5 *मिलियन हेक्टेयर), उरुग्वे (*2.7 *मिलियन हेक्टेयर), और भारत (*2.6 *मिलियन हेक्टेयर) हैं। वैश्विक जैविक बाजार* 120 *बिलियन यूरो (लगभग* 132 *बिलियन अमेरिकी डॉलर) तक पहुंच गया, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका* 41 *प्रतिशत*, *यूरोपीय संघ* 37 *प्रतिशत और चीन कुल बाजार का* 8.5 *प्रतिशत शामिल है।*

किसानों की आय को दोगुना करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों आदि जैसे बाहरी इनपुट पर कृषि व्यय को कम करना होगा और शून्य बजट प्राकृतिक खेती जैसी प्राकृतिक कृषि को प्रोत्साहित करना होगा। 16 दिसंबर 2021 को प्राकृतिक खेती पर राष्ट्रीय सम्मेलन में किसानों को अपने संबोधन के दौरान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने टिप्पणी की कि "हमें न केवल कृषि के इस प्राचीन ज्ञान को फिर से सीखने की जरूरत है, बल्कि इसे आधुनिक समय के लिए तेज करने की भी जरूरत है। इस दिशा में हमें नये सिरे से शोध करना होगा। प्राचीन ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक ढाँचे में ढालना होगा"। प्रधानमंत्री ने कहा कि प्राकृतिक खेती से जिन्हें सबसे ज्यादा फायदा होगा वे देश के करीब 80 फीसदी किसान हैं। उन्होंने हर राज्य सरकार से आग्रह किया कि प्राकृतिक खेती को एक जन आंदोलन बनाने के लिए आगे आएं। उन्होंने जोर देकर कहा कि इस अमृत महोत्सव में हर पंचायत के कम से कम एक गांव को प्राकृतिक खेती से जोड़ने का प्रयास किया जाना

ISSN: 3049-2211

चाहिए। भारत के प्रमुख राज्यों में बिहार में प्रति व्यक्ति आय सबसे कम है के साथ लगातार गरीबी की दर उच्च है। इस बात के प्रमाण बढ़ रहे हैं कि भारत में भूमि जोत का आकार बहुत छोटा है। प्रौद्योगिकी के आगमन से आधुनिक आदानों की मांग बढ़ गई है जिसके लिए ऋण सहायता की आवश्यकता होती है। आंकड़े कहते हैं कि देश में 51.9 प्रतिशत प्रतिशत कृषक परिवार कर्जदार हैं।

जीरो बजट शब्द का तात्पर्य सभी फसलों के उत्पादन की शून्य लागत से है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती किसानों को टिकाऊ कृषि पद्धतियों की ओर मार्गदर्शन करती है। जिससे मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने रसायन मुक्त कृषि सुनिश्चित करने और उत्पादन की कम लागत (शून्य लागत) सुनिश्चित करने में मदद मिलती है और जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती एक कृषि पद्धति है जो प्रकृति के अनुरूप फसल उगाने में विश्वास करती है। इस अवधारणा को 1990 के दशक के मध्य में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों और गहन सिंचाई द्वारा संचालित हरित क्रांति के तरीकों के विकल्प के रूप में कृषक और पद्म श्री पुरस्कार विजेता सुभाष पालेकर द्वारा प्रचारित किया गया था। शून्य बजट प्राकृतिक खेती मॉडल कृषि व्यय को काफी हद तक कम कर देता है और कृषि ऋण पर निर्भरता समाप्त कर देता है। यह खरीदे गए इनपुट पर निर्भरता को भी कम करता है क्योंकि यह स्वयं के बीजों और स्थानीय रूप से उपलब्ध प्राकृतिक उर्वरकों के उपयोग को प्रोत्साहित करता है और खेती प्रकृति के साथ समन्वय में की जाती है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती कई वातन के माध्यम से मीथेन उत्सर्जन को काफी कम कर देती है। इसमें मल्चिंग का अभ्यास करके अवशेष जलाने से बचने की भी क्षमता है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शून्य बजट प्राकृतिक खेती में खेती की लागत कम है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के प्रमुख सिद्धांतः

प्राकृतिक इनपुटः शून्य बजट प्राकृतिक खेती महंगे, सिंथेटिक इनपुट के बजाय प्राकृतिक, स्थानीय इनपुट के उपयोग पर जोर देता है।

शून्य बाहरी इनपुटः शून्य बजट प्राकृतिक खेती शून्य रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग करता है। लक्ष्य उन किसानों पर वित्तीय बोझ को खत्म करना है जो अन्यथा पारंपरिक खेती के लिए बाहरी इनपुट खरीदने पर बहुत अधिक निर्भर हैं।

अंतरफसल और जैव विविधताः शून्य बजट प्राकृतिक खेती मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने, पोषक तत्वों को संतुलित करने और कीटों के संक्रमण को कम करने के लिए एक ही खेत में कई फसलें लगाने को प्रोत्साहित करता है। पारंपरिक मिश्रित फसल, फसल चक्र और विविध स्थानीय किस्मों के उपयोग से मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार और कीटों के प्रकोप को रोकने में मदद मिलती है।

मल्चिंग और मिट्टी की नमी संरक्षणः मल्चिंगः फसल अवशेष जैसे कार्बनिक पदार्थ का उपयोग मिट्टी को ढकने, वाष्पीकरण को कम करने,

मिट्टी को ठंडा रखने और नमी के स्तर को बनाए रखने के लिए किया

जाता है।

गाय आधारित खेतीः शून्य बजट प्राकृतिक खेती उर्वरकों और कीटनाशकों के लिए देसी (स्वदेशी) गाय के गोबर और मूत्र के उपयोग पर निर्भर करता है।

केंद्र सरकार की विभिन्न योजनाओं जो जैविक खेती और शून्य बजट प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दे रही हैः

- डेयर आई सी ए आर अपनी योजना योजना 'नेटवर्क प्रोजेक्ट ऑन ऑर्गेनिक फार्मिंग (एनपीओएफ)
- पी के वी वाई ,राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (एनएमएसए) के तहत मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन (एसएचएम) योजना
- मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट फॉर नॉर्थ ईस्टर्न रीजन (एमओवीसीडी-एनईआर),
- आत्मनिर्भर भारत के कृषि अवसंरचना कोष (एआईएफ)
- राष्ट्रीय तिलहन और तेल पाम मिशन (एनएमओओपी) और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम)

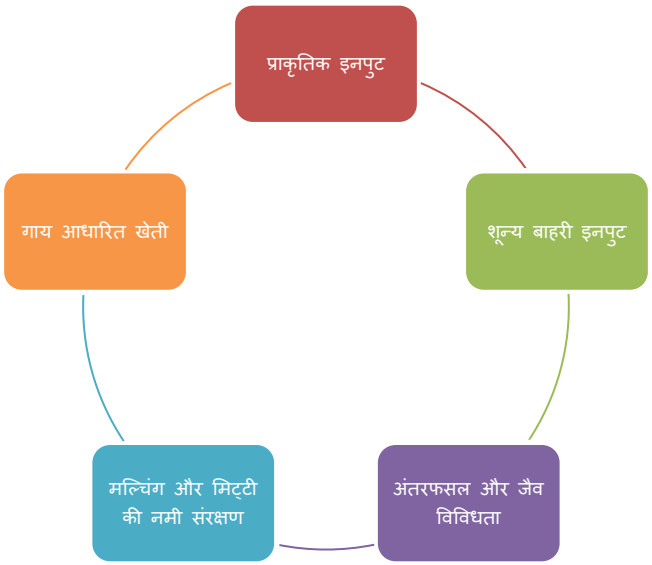

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के सिद्धांत

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के लाभ

- कम इनपुट लागत
- पर्यावरणीय लाभ
- स्थिरता
- किसानों का आर्थिक सशक्तिकरण

शून्य बजट प्राकृतिक खेती की चुनौतियाँ:

स्केलेबिलिटी और पैदावार: कुछ किसान कम पैदावार के बारे में चिंता व्यक्त करते हैं, खासकर शून्य बजट प्राकृतिक खेती में परिवर्तन के शुरुआती वर्षों में। दीर्घकालिक परिणाम हमेशा सिंथेटिक इनपुट के साथ देखी गई तत्काल, उच्च पैदावार से मेल नहीं खा सकते हैं, विशेष रूप से उच्च मांग वाली, वाणिज्यिक फसलों के लिए।

ज्ञान और प्रशिक्षण: शून्य बजट प्राकृतिक खेती के लिए महत्वपूर्ण ज्ञान हस्तांतरण, प्रेरणा और कौशल विकास की आवश्यकता है, क्योंकि किसानों को प्राकृतिक खेती तकनीकों और तरीकों के अभ्यास को फिर से शुरू करने की आवश्यकता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिरोध: कई किसान रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग करने के आदी हैं और अपनी पुरानी आदतों या उपज के नुकसान के डर के कारण शून्य बजट प्राकृतिक खेती पर स्विच करने का विरोध कर सकते हैं।

निष्कर्ष

शून्य बजट प्राकृतिक खेती बाहरी इनपुट को कम करके और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देकर टिकाऊ कृषि के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है। हालाँकि चुनौतियाँ हैं, विशेष रूप से स्केलेबिलिटी और प्रारंभिक उपज के संबंध में, इनपुट लागत को कम करने और पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार करने की इसकी क्षमता इसे अधिक लचीली, कम लागत वाली खेती के तरीकों की तलाश कर रहे किसानों के लिए एक आकर्षक विकल्प बनाती है।

ISSN: 3049-2211

गेंदा की खेती

प्रध्यूम

एमएससी (उद्यानिकी)

के.एन.के. उद्यानिकी महाविद्यालय मंदसौर (मध्य प्रदेश)

परिचय

गेंदा (मैरीगोल्ड) एक लोकप्रिय वार्षिक फूल वाला पौधा है जो अपने चमकीले पीले और नारंगी फूलों, अनुकूलनशीलता और खेती में आसानी के लिए जाना जाता है। भारत में, धार्मिक और सामाजिक समारोहों में मालाओं और सजावट के लिए इसका व्यावसायिक महत्व है। गेंदा मूल रूप से मेक्सिको और मध्य अमेरिका का पौधा है, और अब इसे दुनिया भर में उगाया जाता है, जिसमें भारत के प्रमुख उत्पादक राज्य जैसे तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश शामिल है। इसके सजावटी मूल्य के अलावा, गेंदे के औषधीय और पाक संबंधी उपयोग भी हैं, और यह कीटों को दूर भगाने वाले गुणों के लिए भी जाना जाता है।

जलवायु और मिट्टी की आवश्यकताएँ

गेंदे के लिए मध्यम जलवायु सबसे उपयुक्त होती है, जिसका आदर्श तापमान 18-20°C के बीच हो. 35°C से अधिक तापमान पौधे की वृद्धि और फूल के आकार और संख्या को कम कर सकता है। गंभीर शीतकालीन पाला भी पौधों और फूलों को नुकसान पहुंचा सकता है।

गेंदा विभिन्न प्रकार की मिट्टी में अनुकूल होता है, लेकिन 7-7.5 पीएच मान वाली अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी को आदर्श माना जाता है। इसे अच्छे जल निकास वाली रेतीली दोमट उपजाऊ मिट्टी में सबसे अच्छा उगाया जा सकता है।

किस्में

गेंदे की दो मुख्य प्रजातियाँ खेती की जाती हैं: अफ्रीकी गेंदा (टैगेटस इरेकटा) और फ्रेंच गेंदा (टैगेटस पटुला).

- **अफ्रीकी गेंदा (लंबा):** पौधे सीधे, शाखित और लगभग 90 सेमी लंबे होते हैं, जिनमें बड़े गोलाकार फूल होते हैं जो नींबू पीले, पीले, सुनहरे पीले या नारंगी रंग के होते है। लोकप्रिय किस्मों में पूसा नारंगी गेंदा, पूसा बसंती गेंदा, क्रैकरजैक, क्लाइमेक्स और गोल्डन एज शामिल है।
- **फ्रेंच गेंदा (बौना):** पौधे घने और लगभग 30 सेमी लंबे होते हैं, जिनमें गहरे हरे पत्ते और लाल रंग के तने होते है। फूल छोटे होते हैं, या तो एकल या दोहरे होते हैं, और पीले से महोगनी लाल रंग के होते है। लोकप्रिय किस्मों में रेड ब्रोकेड, रस्टी रेड, बटर स्कॉच, वैलेंसिया और स्प्री शामिल है।

खेती के तरीके

भूमि की तैयारी

भूमि को अच्छी तरह से जोत कर महीन भुरभुरी बना लेना चाहिए और 20-25 टन/हेक्टेयर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद को मिट्टी में मिला देना चाहिए।

ISSN: 3049-2211

प्रसार

गेंदे को मुख्य रूप से बीज से उगाया जाता है, लेकिन कलमों से भी इसका प्रसार किया जा सकता है।

नर्सरी तैयार करना

- बीज 5-7 दिनों में अंकुरित होते हैं और पौधे 3-4 सप्ताह के बाद रोपण के लिए तैयार हो जाते है।
- डंपिंग ऑफ को रोकने के लिए बीज को कैप्टन @ 2 ग्राम/किलो से उपचारित करें।
- बीजों को नर्सरी बेड या गमलों में पतली कतारों में (6-8 सेमी कतार से कतार की दूरी और 2 सेमी गहरा) बोएं।
- नर्सरी बेड को पूरी अवधि तक नम रखें।

रोपण

- रोपण के समय पौधे मजबूत होने चाहिए और उनमें 3-5 सच्ची पत्तियां होनी चाहिए।
- रोपण शाम के समय सबसे अच्छा किया जाता है।
- पौधे का घनत्व किस्म और मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करता है।
- सामान्य दूरी: अफ्रीकी गेंदे के लिए 40 सेमी x 40 सेमी और फ्रेंच गेंदे के लिए 30 सेमी x 30 सेमी।

खाद और उर्वरक

हल चलाने से पहले, 20-25 टन/हेक्टेयर अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाएं। अनुशंसित N:P:K की खुराक 100:75:75 किलोग्राम/हेक्टेयर है। आधे नाइट्रोजन और सभी पोटाश और फास्फोरस को रोपण के एक सप्ताह बाद बेसल खुराक के रूप में लगाएं, और शेष नाइट्रोजन को 30-40 दिनों के बाद लगाएं। फूलों की गुणवत्ता और उपज के लिए जिंक और बोरॉन भी आवश्यक है।

सिंचाई

पानी देने की आवृत्ति मिट्टी और मौसम पर निर्भर करती है। कली बनने से लेकर कटाई तक लगातार नमी सुनिश्चित करते हुए साप्ताहिक या आवश्यकतानुसार पानी दें, जबकि जलभराव से बचें।

निराई और गुड़ाई

खरपतवार, खासकर बरसात के मौसम में, एक महत्वपूर्ण समस्या है। विकास के दौरान नियमित निराई और गुड़ाई (3-4 बार) आवश्यक है। गंभीर खरपतवार समस्याओं के लिए खरपतवारनाशकों का उपयोग किया जा सकता है।

पिंचिंग

रोपण के 40 दिनों के बाद शीर्षस्थ कली को तोड़ने से घना विकास और फूलों की अधिक उपज को बढ़ावा मिलता है।

मिट्टी चढ़ाना

रोपण के 3 सप्ताह बाद मिट्टी चढ़ाना पौधे की स्थिरता, जल निकासी और खरपतवार नियंत्रण में सुधार करता है।

सहारा देना

लंबे अफ्रीकी गेंदे की किस्मों को सहारा देने के लिए बांस की डंडियों की आवश्यकता होती है।

कीट और रोग प्रबंधन

कीट

आम कीटों में एफिड्स, स्पाइडर माइट्स, थ्रिप्स, व्हाइटफ्लाइज़ और कैटरपिलर शामिल है। नियंत्रण विधियों में कीटनाशक साबुन, नीम का तेल, बागवानी तेल, जैविक नियंत्रण, या हाथ से उठाना शामिल है।

रोग

डंपिंग ऑफ, कॉलर रॉट, फूलों की कली का सड़ना, पाउडरी मिल्ड्यू और पत्ती के धब्बे/झुलसा रोग जैसी बीमारियां गेंदे को प्रभावित कर सकती है। प्रबंधन में बीज उपचार, मिट्टी का नसबंदी, स्वस्थ पौधों का उपयोग, और कैप्टन, कार्बेन्डाजिम, डाइथेन एम-45, कराथेन, या सल्फर पाउडर जैसे उपयुक्त कवकनाशकों का उपयोग शामिल है।

कटाई

गेंदे के फूल रोपण के लगभग 2।5 महीने बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं, जब वे पूर्ण आकार में पहुंच जाते है। सुबह या शाम को डंठल के एक हिस्से के साथ फूलों को तोड़ें। कटाई से पहले सिंचाई करने से फूलों का जीवन बढ़ सकता है, और हर 3 दिनों में नियमित रूप से तोड़ने से उपज बढ़ती है।

उपज

उपज किस्म और प्रथाओं के अनुसार भिन्न होती है। अफ्रीकी गेंदा 11-18 टन/हेक्टेयर उपज देता है, जबकि फ्रेंच गेंदा 8-12 टन/हेक्टेयर उपज देता है।

कटाई के बाद प्रबंधन और भंडारण

कटाई किए गए फूलों को ठंडी जगह पर रखें। स्थानीय बाजारों के लिए, गनी बैग का उपयोग करें; दूर के बाजारों के लिए, नम मलमल के कपड़े से ढकी बांस की टोकरियों का उपयोग करें।

विपणन और वितरण

गेंदा की सजावट, माला और धार्मिक कार्यों के लिए मांग रहती है। इसे प्रमुख शहरों के विभिन्न स्थानों पर विपणन किया जा सकता है। आवश्यक तेल निष्कर्षण जैसे मूल्य संवर्धन से लाभप्रदता बढ़ सकती है।

■■■

ISSN: 3049-2211

जैव कीटनाशकों से कीट नियंत्रण: किसानों का नया हथियार

आस्था सिंह

एम.एससी. (कीट विज्ञान), B.H.U

भारतीय कृषि में कीट नियंत्रण एक बड़ी चुनौती है। रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग ने पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डाला है। अब समय है कि किसान प्राकृतिक और सुरक्षित विकल्पों की ओर बढ़ें। ऐसे में जैव कीटनाशक किसानों के लिए एक सशक्त, सुरक्षित और लाभकारी विकल्प बनकर सामने आया हैं।

जैव कीटनाशक होता क्या हैं?

जैव कीटनाशक ऐसे उत्पाद हैं जो जीवाणु, फफूंद, वायरस या वनस्पति स्रोतों से तैयार किए जाते हैं। ये विशेष रूप से लक्षित कीटों पर असर डालते हैं और मित्र कीटों को नुकसान नहीं पहुँचाते। प्रमुख जैव कीटनाशकों की सूची:

जैव कीटनाशक	नियंत्रण कीट	प्रमुख फसलें	प्रयोग मात्रा
Bt (Bacillus thuringiensis)	छेदक	चना, मटर, सब्जियाँ	0.5 ग्राम/लीटर पानी
Beauveria bassiana	सफेद मक्खी, माहू	सब्जियाँ	5ग्राम/लीटर
Neem oil (नीम तेल)	थ्रिप्स, माहू	कपास, सब्जियाँ	30 मि.ली./लीटर
NPV	हेलिकोवर्पा	चना,अरहर, कपास, मटर, सब्जियाँ सूरजमुखी	250–500 LE/ha संध्या समय छिड़काव

जैव कीटनाशकों के लाभ:

1. पर्यावरण के लिए सुरक्षित: जैव कीटनाशक मिट्टी, जल और वायु को प्रदूषित नहीं करते हैं।
2. स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित: ये मानव, पशु और परागणकर्ताओं जैसे मित्र कीटों के लिए सुरक्षित होते हैं।
3. प्रतिरोधक क्षमता नहीं बनती: कीटों में जल्दी प्रतिरोध नहीं बनता, जिससे यह लंबे समय तक असरदार रहते हैं।
4. लाभकारी कीटों को नुकसान नहीं: मधुमक्खी, ट्रीकोग्रामा आदि मित्र कीटों को नुकसान नहीं पहुँचाते।
5. जैविक खेती में सहायक: जैविक खेती में जैव कीटनाशकों का प्रमुख स्थान है। मृदा स्वास्थ्य को सुधारते हैं: यह मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा देते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है।
6. लागत में किफायती: दीर्घकालिक उपयोग में रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में सस्ते और प्रभावी होते हैं। अवशेष मुक्त

7. फसल उत्पादन: फसलों में कोई रासायनिक अवशेष नहीं रहता, जिससे उपभोक्ता का स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है।

कई किसानों ने जैव कीटनाशकों से फली छेदक, माहू और थ्रिप्स जैसे कीटों पर बेहतर नियंत्रण पाया है। साथ ही रासायनिक कीटनाशकों पर खर्च भी कम हुआ है।

जैव कीटनाशक आज के समय में किसानों के लिए प्राकृतिक और प्रभावी हथियार बन चुके हैं। उचित जानकारी, प्रशिक्षण और समय पर प्रयोग द्वारा किसान इनका भरपूर लाभ उठा सकते हैं|

■■■

ISSN: 3049-2211

नमो ड्रोन दीदी योजना के माध्यम से कृषि में महिलाओं का तकनीकी सशक्तिकरण

लेफ्ट डॉ सिंपल जैन

सहायक प्राध्यापक

आस्पी पोषण और सामुदायिक विज्ञानं महाविद्यालय, गुजरात

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। ग्रामीण भारत की रीढ़ मानी जाने वाली महिलाएं न केवल खेतों में परिश्रम करती हैं, बल्कि कृषि कार्यों की एक बड़ी जिम्मेदारी भी निभाती हैं। फिर भी, तकनीक के क्षेत्र में उनकी भागीदारी सीमित रही है। इसी चुनौती को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने एक अभिनव पहल नमो ड्रोन दीदी योजना की शुरुआत की है। यह योजना महिलाओं को ड्रोन जैसी उन्नत तकनीकों से जोड़कर उन्हें कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

योजना का परिचय

नमो ड्रोन दीदी योजना की घोषणा प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 30 नवंबर, 2023 को की थी। जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को ड्रोन संचालन और कृषि तकनीकी सेवाओं में दक्ष बनाना है। नमो ड्रोन दीदी योजना की घोषणा प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा की गई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को ड्रोन संचालन और कृषि तकनीकी सेवाओं में दक्ष बनाना है। इस योजना के तहत, महिलाओं को ड्रोन उड़ाने, कृषि में इसका उपयोग करने, उसका रखरखाव करने तथा इससे आजीविका कमाने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारत में, यह कार्यक्रम स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से चलाया जा रहा है। महिलाएं अपने गांव में ही रहकर इस योजना की गतिविधियों का क्रियान्वन करती है। तीन साल की अवधि में, सरकार महिला स्वयं सहायता समूहों को 15,000 ड्रोन प्रदान करेगी। जिससे वे विभिन्न कृषि गतिविधियों में ड्रोन के उपयोग कर पायेगी। इस पहल से महिलाओं के तकनीकी विकास के साथ उन्हें रोज़गार के अवसर भी प्रदान होंगे।

इस योजना में स्वयं सहायता समूह की चयनित महिला सदस्यों को 15-दिन का प्रशिक्षण दिया जायेगा। जिसमे उन्हें ड्रोन चलाना सिखाने के साथ साथ कृषि संबंधित प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इस प्रशिक्षण में खेतों की निगरानी के लिए ड्रोन का उपयोग करना, बिना किसी फील्ड विजिट के बीज बोना और उर्वरक डालने में सहायता करना सम्मिलित है। कृषि विकास के अलावा, यह योजना वित्तीय सहायता प्राप्त करने में भी मदद करती है क्योंकि कुशल महिला पायलटों को विभिन्न संस्थानों और कंपनियों में ड्रोन पायलट सेवाएँ प्रदान करने के लिए

ISSN: 3049-2211

अच्छा भुगतान किया जायेगा। सरकार भारत में सभी सहभागी स्वयं सहायता समूहों को अपने सदस्यों को ड्रोन पायलट के रूप में प्रशिक्षण देने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है। सर्कार ड्रोन की खरीद में 80% तक की वित्तीय सहायता या सब्सिडी दे रही हैं।

कृषि में ड्रोन तकनीक की भूमिका

ड्रोन अब सिर्फ रक्षा और निगरानी तक सीमित नहीं रहे। कृषि के क्षेत्र में इसका उपयोग कई उद्देश्यों के लिए किया जाता है:

- ✓ उर्वरक और कीटनाशकों का छिड़काव
- ✓ फसल स्वास्थ्य की निगरानी
- ✓ बीज बोना
- ✓ भूमि मानचित्रण और सर्वेक्षण
- ✓ उपज का आंकलन

यह सभी कार्य पारंपरिक तरीकों की तुलना में अधिक तेज़, सटीक और कम लागत में पूरे होते हैं।

महिलाओं की भूमिका: परंपरा से नवाचार की ओर

ग्रामीण भारत में महिलाएं पारंपरिक कृषि कार्यों जैसे निराई, कटाई, बीज चयन, सिंचाई आदि में हमेशा से सक्रिय रही हैं। लेकिन जब बात तकनीक के उपयोग की आती है, तो पुरुषों का वर्चस्व देखने को मिलता है। नमो ड्रोन दीदी योजना इस असंतुलन को समाप्त करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

इस योजना के तहत महिलाएं:

- ✓ ड्रोन पायलट बनती हैं।
- ✓ टेक्निकल ऑपरेशन को समझती हैं।
- ✓ ड्रोन सेवा प्रदाता के रूप में कार्य करती हैं।
- ✓ स्वयं का उद्यम स्थापित कर आय अर्जित करती हैं।

तकनीकी सशक्तिकरण के पहलु

1. प्रशिक्षण और कौशल विकास

इस योजना में महिलाओं को ड्रोन उड़ाने, जीपीएस, सॉफ्टवेयर और सेंसर टेक्नोलॉजी का प्रयोग सिखाया जाता है। DGCA (Directorate General of Civil Aviation) द्वारा मान्यता प्राप्त प्रशिक्षण संस्थानों में यह प्रशिक्षण दिया जाता है।

2. आर्थिक आत्मनिर्भरता

ड्रोन सेवाओं के माध्यम से महिलाएं एक नई आय स्त्रोत प्राप्त करती हैं। इससे न केवल उनकी आजीविका सुदृढ़ होती है, बल्कि घर-परिवार और समाज में उनका आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

3. डिजिटल समावेशन

प्रशिक्षण में स्मार्टफोन ऐप्स, डिजिटल मैपिंग, डेटा विश्लेषण आदि शामिल होते हैं, जिससे महिलाएं डिजिटल युग में प्रवेश करती हैं।

समाज में बदलाव की लहर

नमो ड्रोन दीदी योजना केवल एक तकनीकी पहल नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति है। इससे कई सकारात्मक बदलाव देखने को मिल रहे हैं। महिलाएं अब केवल कृषि मजदूर नहीं, बल्कि कृषि तकनीकी विशेषज्ञ बन रही हैं। गाँव में महिलाओं को एक नया सम्मान और पहचान प्राप्त हो रही है। युवा लड़कियों को तकनीकी शिक्षा के लिए प्रेरणा मिल रही है। समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा मिल रहा है।

योजना की चुनौतियाँ

हालांकि यह योजना अत्यंत सराहनीय है, फिर भी कुछ व्यावहारिक चुनौतियाँ सामने आती हैं:

1. तकनीकी प्रशिक्षण की पहुंच: हर ग्रामीण क्षेत्र में समुचित प्रशिक्षण संस्थान उपलब्ध नहीं हैं।
2. सांस्कृतिक बाधाएँ: कुछ क्षेत्रों में महिलाएं बाहर जाकर प्रशिक्षण लेने से झिझकती हैं।
3. ड्रोन की उच्च लागत: सब्सिडी के बावजूद, ड्रोन की प्रारंभिक लागत कई बार महिलाओं के लिए एक चुनौती बनती है।
4. मरम्मत और रखरखाव की सुविधा: ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी सहायता की कमी बनी रहती है।

सरकार एवं समाज की भूमिका

इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित प्रयास आवश्यक हैं:

- ✓ स्थानीय प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना
- ✓ महिला प्रशिक्षकों की नियुक्ति, ताकि महिलाएं सहज महसूस करें
- ✓ सामुदायिक स्तर पर ड्रोन बैंक की स्थापना, जिससे कई समूह ड्रोन साझा कर सकें
- ✓ मीडिया और स्कूलों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाना

निष्कर्ष

नमो ड्रोन दीदी योजना महिलाओं के लिए तकनीकी सशक्तिकरण की दिशा में एक मील का पत्थर है। यह योजना महिलाओं को न केवल ड्रोन जैसी अत्याधुनिक तकनीक से परिचित कराती है, बल्कि उन्हें समाज में नेतृत्व की भूमिका निभाने के योग्य भी बनाती है। यदि इसे सही रूप में लागू किया जाए, तो यह भारत की कृषि अर्थव्यवस्था और लैंगिक समानता दोनों के लिए एक क्रांतिकारी परिवर्तन का वाहक बन सकती।

ISSN: 3049-2211

बाजरे की उन्नत खेती

गिरिजेश कुमार जायसवाल[1], इं अशोक कुमार पांडे[2] एव डॉ सिया राम[3]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (पादप रोग विज्ञान), [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि अभियांत्रिकी), [3]विषय वस्तु विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान)

कृषि विज्ञान केंद्र, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

आचार्य नरेन्द्र देव कृशि एवं प्रौद्यौगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

छोटे अनाजों में बाजरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण फसल है। बाजरा की फसल किसानो को विपरीत परिस्थितियो एवं सीमित वर्षा वाले क्षेत्रों तथा बहुत कम उर्वरको की मात्रा की दशा हेतु संस्तुत की जाती है। यह फसल गरीबों के लिये ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन एवं मिनरल का प्रमुख स्रोत है। न्यूट्रीशन जरनल के अध्ययन अनुसार 03 साल के बच्चे यदि 100 ग्राम बाजरा के आटे का सेवन करते है तो वह अपनी प्रतिदिन की आयरन (लौह) की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। बाजरे का आटा भारतीय महिलाओं के खून की कमी को पूरा करने का एक सुलभ साधन है। भारत वर्ष मे ही नहीं अपितु संसार मे महिलाये एवं बच्चों मे लौहतत्व (आयरन) एवं मिनरल (खनिज लवण) की कमी पायी जाती है। सूखे क्षेत्रों में गरीबों के लिए बाजरा भोजन का प्रमुख साधन है। सर्दी के दिनो में केवल निर्धन ही नहीं अपितु सम्पन्न लोग भी बाजरे की रोटी खाना पसन्द करते हैं। बाजरे के दानों में 2.0 से 3.5 प्रतिशत खनिज और 4.0 से 8.0 प्रतिशत वसा पाया जाता है। बाजरा के दानों में 10.5 से 14.5 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है जो कि ज्वार एवं मक्का से भी ज्यादा है। दानों का जैविक मान धान एवं गेहूँ के दानों के समतुल्य पाया गया है तथा शरीर को ऊर्जा भी उचित मात्रा में प्रदान करता है।

प्रदेश में क्षेत्रफल की दृष्टि से बाजरा का स्थान गेहूँ, धान एवं मक्का के बाद आता है। कम वर्षा वाले स्थानों के लिए यह एक अच्छी फसल है। वैज्ञानिक विधि तथा उचित प्रबन्धन करके बाजरे की खेती से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। खरीफ के अलावा जायद में भी बाजरा की खेती सफलतापूर्वक की जाने लगी है, क्योंकि जायद में बाजरा के लिए अनुकूल वातावरण जहाँ इसके दाने के रूप में उगाने के लिए प्रोत्साहित करता है वहीं चारे के लिये भी इसकी खेती की जा सकती है। सिंचाई के जल की समुचित व्यवस्था होने पर आलू, सरसों, चना, मटर

जलवायु आवश्यकता

बाजरे की फसल के लिए उष्ण एवं कम वर्षा वाले क्षेत्र व उपयुक्त रहते हैं। बाजरा मुख्यतः उन स्थानों पर बहुतायत बोया जाता है जहाँ 30 से 50 सें0मी0 तक वार्षिक वर्षा होती है। फसल के वानस्पतिक वृद्धि के लिए नमी युक्त वातावरण के साथ हल्की वर्षा अधिक महत्वपूर्ण है तथा पुष्पावस्था एवं दाना बनने की अवस्था के लिये साफ एवं सूखा

ISSN: 3049-2211

मौसम उपयुक्त रहता है। दाना बनने की अवस्था में वर्षा होने पर बाजरे का अरगट रोग आने की सम्भावना बढ़ जाती है क्योंकि इस रोग के संक्रमण की प्रमुख सम्भावना उच्च आद्रता तथा कम ताप के वातावरण में होती है। जलाक्रान्त भूमियों में बाजरा की खेती नहीं की जा सकती है। बाजरे की फसल के बढ़वार के लिए उपयुक्त तापक्रम 28-32° होता है।

भूमि का चुनाव

बलुई दोमट या दोमट भूमि बाजरा के लिए अच्छी रहती है। यद्यपि दोमट भूमि में बाजरे की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है लेकिन हल्की भूमि अथवा बलुई दोमट भूमि में बाजरे की सर्वोत्तम उपज होती है। प्रायः उन सभी स्थानों में बाजरे की उपज अच्छी होती है जहाँ भूमि के कमजोर होने के कारण अन्य फसलें नहीं उगाई जा सकती हैं। समतल व जीवांश युक्त मृदा में बाजरा की खेती करने से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

भूमि की तैयारी

बाजरे की खेती दोमट, बलुई दोमट एवं बलुई भूमि में सफलता पूर्वक की जा सकती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। अधिक समय तक खेत में पानी भरा रहना फसल को नुकसान पहुचाँ सकता हैं। वर्षा के पश्चात् प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले इल या डिस्क हैरो से करनी चाहिये। इसके पश्चात् हैरो द्वारा एक क्रौस जुताई करके पाटा लगा कर खेत को ढेले रहित एवं समतल कर देना चाहिये।

उन्नत किस्म

बाजरा एक पर-परागित फसल है, अतः बाजरे की कोई भी उन्नत किस्म अधिक समय तक शुद्ध नहीं रह पाती है। अतः किसानो को चाहिये कि वे अपने बोने के लिये उत्तम बीज प्राप्त करने के लिये बोने बाजरे की फसल के लिए भूमि की अच्छी तैयारी की आवश्यकता होती है। एक बार मिट्टी पलट हल से 15-20 सें०मी० गहरी जुताई करने के उपरान्त दो बार देसी हल से जुताई करना पर्याप्त होता है। खेत में पटेला चलाकर उसे की बुआई के लिये समतल कर देना चाहिये। भूमि का जल निकास उत्तम होना चाहिए। बुवाई प्रबन्धन

क्रम	प्रजाति का प्रकार	किस्म का नाम	पकने की अवधि (दिन)	ऊँचाई (से.मी.)	दाने की उपज (कु./हे.)
1	संकुल	आई.सी.एम.वी.-221	75-80	200-225	20-22
2	संकुल	आई.सी.टी.पी.-8203	80-85	180-190	18-20
3	संकुल	राज-171	80-85	180-210	20-25
4	संकुल	पूसा कम्पोजिट-383	80-85	180-210	20-25
5	संकर	86 एम-52	78-82	170-180	28-30
6	संकर	जी.एच.बी.-526	80-85	170-180	28-30
7	संकर	पी.बी.-180	80-85	180-190	28-30
8	संकर	जी.एच.बी.-558	75-80	170-180	28-30

बीज दर एवं बुवाई की विधि

बाजरे की बुवाई का समय किस्मों के पकने की अवधि पर बहुत निर्भर करता है। बाजरे की दीर्घावधि (80-90 दिनों) में पकने वाली किस्मों की बुवाई जुलाई के प्रथम सप्ताह में कर देनी चाहिये। मध्यम अवधि (70-80 दिनों) में पकने वाली किस्मों की बुवाई 10 जुलाई तक कर देनी चाहिये तथा जल्दी पकने वाली किस्मों (65-70 दिन) की बुवाई 10 से 20 जुलाई तक की जा सकती है। बाजरे की फसल के लिए 4-5 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। अच्छी उपज के लिए खेत में पौधों की उचित संख्या होनी चाहिये। बाजरे की बुवाई पंक्तियों में 45 से 50 सेमी. की दूरी पर तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 से.मी. रखनी चाहिये।

खाद एवं उर्वरक

फसल के पौधों की उचित बढ़वार के लिए उचित पोषक प्रबंधन का होना आवश्यक है। अतः भूमि की तैयारी करते समय बाजरे की फसल के लिए 5 टन अच्छी सडी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद प्रयोग करनी चाहिये। इसके पश्चात् बाजरे की वर्षा आधारित फसल में 40 किग्रा. नाइट्रोजन व 40 किग्रा, फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। बुवाई करते समय 44 किग्रा. यूरिया एवं 250 किग्रा. सिंगल सुपर फारफेट या 87 किग्रा. डी.ए.पी. व 9.5 किग्रा. यूरिया खेत में प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिये। उर्वरक सीड कम फर्टिलाइजर ड्रील के द्वारा बुवाई के साथ देना लाभप्रद रहता है। शेष 20 किग्रा, नाईट्रोजन देने के लिए फसल जब एक महिने की हो जायें तो निराई-गुड़ाई करने के पश्चात् यदि खेत में उचित नमी हो तो 43 किग्रा यूरिया प्रति हैक्टेयर की दर से समान रूप से छिडकाव कर देना चाहिये। जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो उस स्थिति में 60 किग्रा. नाईट्रोजन एवं 40 किग्रा, फास्फोरस की मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करनी चाहिये। ध्यान रहे उर्वरकों का उपयोग मिट्टी की जांच के आधार पर ही करना चाहिये।

फसल चक्र

बाजरे की फसल से अधिक पैदाकर प्राप्त करने के लिए उचित फसल चक्र आवश्यक है। असिंचित क्षेत्रों के लिए बाजरे के बाद अगले

ISSN: 3049-2211

वर्ष दलहन फसल जैसे ग्वार, मूंग या मोठ लेनी चाहिये। सिंचित क्षेत्रों के लिए बाजरा - सरसों, बाजरा जीरा, बाजरा- गेंहू फसल चक्र प्रयोग में लेने चाहिये।

जल प्रबंध

पौधों की उचित बढ़वार के लिए नमी का सबसे महत्वूपर्ण स्थान है। वर्षा द्वारा प्राप्त जल के अधिक उपयोग के लिए खेत का पानी खेत में रखना आवश्यक है। इसके लिए खेत की चारों तरफ मेंडबन्दी करनी चाहिये। इसके द्वारा खेत का पानी बाहर बहकर नहीं जायेगा तथा भूमि का जल कटाव से बचाव भी किया जा सकेगा। भूमि में उपलब्ध नमी का वाष्पीकरण द्वारा नुकसान को रोकने के लिए फसल की पंक्तियों के बीच बिछावन का प्रयोग लाभप्रद रहता है। विछावन के लिए खरपतवार या फसल के अवशेषों को प्रयोग में लिया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त फसल की बुवाई, मेड एवं कुंड विधि द्वारा वर्षा जल गहरे कुंडो में इक्ट्ठा जो जाता है तथा खेत में नमी अधिक दिनों तक संचित रहती है। जिसके द्वारा फसल की अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। सिचिंत क्षेत्रों के लिए जब वर्षा द्वारा पर्याप्त नमी न प्राप्त हो तो समय समय पर सिचाई करनी चाहिये। बाजरे की फसल के लिए 3-4 सिंचाई पर्याप्त होती हैं ध्यान रहे दाना बनते समय खेत में नमी रहनी चाहिये। इससे दाने का विकास अच्छा होता हैं. एवं दाने व चारे की उपज में बढ़ोतरी होती है।

पपड़ी प्रबंधन

फसल की बुवाई के बाद उगने से पहले वर्षा आ जाये तथा वर्षा के बाद तेज धूप निकल जाये तो भूमि की उपरी सतह सख्त हो जाती है, तथा सूखकर पपड़ी बनने के कारण बीज अंकुरित होकर बाहर नहीं आ पाता। पपड़ी बनने का मुख्य कारण भूमि की भौतिक संरचना है। पपड़ी की समस्या से बचने के लिए कुंडों में 8-10 टन गोबर या कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना लाभ दायक रहता है।

खरपतवार प्रबन्धन

फसल की आरम्भिक अवस्था में खरपतवारों की समस्या अधिक रहती है। बुवाई के तीन सप्ताह बाद कतारों के बीच हल्का कल्टीवेटर चलाकर या खुरपी से निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। साथ ही नमी का संरक्षण भी हो जाता है। खरपतवारों पर नियंत्रण के लिए बुवाई के बाद जमाव से पूर्व एट्राजीन 0.5 कि०ग्रा० सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से 700-800 लीटर पानी में घोलकर एक छिड़काव समान रूप से करना चाहिये।

कटाई एवं गहाई

बाजरे के सिट्टे जब हल्के भूरे रंग में बदलने लगे तथा पौधे सूखने लगे तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। इस समय दाने सख्त होने लगते हैं, तथा नमी लगभग 20 प्रतिशत रहती है। कटाई के बाद सिद्धों को अलग कर लेना चाहिये तथा अच्छी प्रकार सूखाकर थैसर द्वारा दानों को अलग कर लिया जाता है। थ्रेसर की सुविधा नहीं होने पर सिट्टों को डंडो द्वारा पीटकर दानों को अलग कर अच्छी प्रकार सुखा लेना चाहिए।

उपज एवं आर्थिक लाभ

उन्नत विधियों द्वारा खेती करने पर बाजरे की वर्षा आधारित फसल से औसतन 12-15 कुन्तल दाने की एवं 30 से 40 कुन्तल प्रति हैक्टेयर सूखे चारे की उपज प्राप्त हो जाती है। बाजरे का प्रति किलो 9 रूपये भाव रहने पर 5 से 6 हजार रूपये प्रति हैक्टेयर शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

पादप संरक्षण

दीमक - दीमक बाजरे के पौधे की जड़ें खाकर नुकसान पहुँचाती हैं। दीमक के नियंत्रण के लिए खेत की तैयारी के समय अन्तिम जुताई पर क्यूनालफोस या क्लोरपाइरिफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर की 20 से 25 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में अच्छी प्रकार से मिला देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त बीज को 4 मि.ली. क्लोरोपायरीफास प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये। खड़ी फसल में यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो दीमक से नियत्रण हेतु सिंचाई के पानी के साथ 2 लीटर क्लोरोपाइरीफोस की मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करनी चाहिये ।

कातरा- बाजरे की फसल को कातरे की लट प्रारम्भिक अवस्था में काटकर नुकसान पहुँचाती है। कातरे के नियत्रण हेतू खेत के चारों तरफ घास को साफ करना चाहिये। कातरे के नियंत्रण हेतु क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर की 20-25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिये।

सफेद लट- इस कीट की लट तथा प्रौढ़ दोनों फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। लट की अवस्था में एक किलो बीज में 3 किलो कारबोफूरान 3 प्रतिशत या क्यूनालफास 5 प्रतिशत कण मिलाकर बुवाई करनी चाहिये। खड़ी फसल ने चार लीटर क्लोरोपायरीफास प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ देनी चाहिये।

रूट बग- रूद बंग के प्रकोप की रोकथाम हेतु 25 किलो मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण को प्रति हैक्टेयर की दर से मुरकना चाहिये। इसके अतिरिक्त क्यूनालफॉस की 1.25 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

जोगिया - इस रोग के कारण पौधे के सिट्टे पत्तियों के रूप की संरचना में बदल जाते है, तथा प्रभावित पौधे की पत्तियां पीली या सफेद रंग की हो

जाती है। इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मों जैसे-एच.एच.बी. 67. आर.एच.बी. 121. राज 171, सी.जेड़.पी.-9802 की बुवाई करनी एग्रोसन जी. एन. 2.50 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये। रोग से प्रभावित पौधे उखाड़ देने चाहिये तथा खड़ी फसल में बुवाई के 25-30 दिन बाद मैन्कोजेब नामक फफूंदनाशक की 2 किग्रा. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव कर देना चाहिये।

अरगट- यह बीमारी पौधों के सिट्टों पर शहद जैसे गुलाबी पदार्थ के रूप में दिखाई देती है। कुछ दिन बाद यह पदार्थ भूरा एवं चिपचिपा हो जाता है तथा बाद में काले पदार्थ के रूप में बदल जाता है। फसल पर सिटटे बनते समय 2.5 किलो जिनेब या 2 किलो मेन्कोजेब के कम से कम 3 छिड़काव तीन चार दिनों के अन्तराल पर करने चाहिये। प्रमाणित एवं उपचारित बीज को बुवाई के लिए प्रयोग करना चाहिये।

स्मट- इस बीमारी के कारण पौधे के सिटदों में दाने हरे रंग एवं बड़े आकर के हो जाते है। बाद में ये दाने काले रंग के हो जाते है तथा पूरे फफूंद के चाहिये, तथा बीज को एप्रोन एम.डी. 35 की 6 ग्राम मात्रा प्रति किलो या

स्पोट से भरे होते है। इस बीमारी के नियंत्रण हेतु प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिये। उचित फसल चक्र अपनाना चाहिये। तथा फसल पर 1ण्5 किलो विटाबैक्स को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

पत्ती धब्बा- इस बीमारी के लक्षण पत्तियों की निचली सतह पर हल्के भूरे काले रंग के नाव के आकार के धब्बों के रूप में देखे जा सकते हैं।जीनेब नामक फफूंद नाशक 0.20 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने पर इस बीमारी को नियंत्रित किया जा सकता है।

ISSN: 3049-2211

मधुमक्खी पालनः किसानों की आय संवर्धन का स्रोत

समीर कुमार सिंह[1], कमल रवि शर्मा[2], वैष्णवी चतुर्वेदी[3] एवं अंकित राय[4]

[1,2]सहायक प्राध्यापक, [3]एम०एससी० (कृषि) छात्रा, [4]पीएच०डी० छात्र, कीट विज्ञान विभाग,

कृषि महाविद्यालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,

कुमारगंज, अयोध्या (उ०प्र०)

मधुमक्खी या मौन पालन एक ऐसा ही व्यवसाय है जो मानव जाति को लाभान्वित करता आ रहा है यह एक कम ख़र्चीला घरेलू उद्योग है जिसमें आय, रोजगार व वातावरण शुद्ध रखने की क्षमता है। यह एक ऐसा रोजगार है जिसे समाज के हर वर्ग के लोग लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मधुमक्खी पालन कृषि व बागवानी उत्पादन 20-30 प्रतिशत तक बढ़ाने क्षमता है। मधुमक्खियाँ समुदाय में रहने वाला कीट है इन्हे इनकी आदतों के अनुकूल कृत्रिम मौन गृह (हाईव) में पालन कर शहद एवं मोम आदि प्राप्त करने को मधुमक्खी पालन या मौन पालन कहते है।

मधुमक्खी परिवारः एक परिवार में एक रानी कई हजार श्रमिक तथा 100-200 नर होते हैं।

रानीः यह पूर्ण विकसित मादा होती है एवं परिवार की जननी होती है। रानी मधुमक्खी का कार्य अंडे देना है। अच्छे पोषण वातावरण में एक इटैलियन जाति की रानी एक दिन में 1500-1800 अंडे देती है। तथा देशी मक्खी करीब 700-1000 अंडे देती है। इसकी उम्र औसतन 2-3 वर्ष होती है।

श्रमिकः यह अपूर्ण मादा होती है एवं मौनगृह के सभी कार्य जैसे अंडों, बच्चों का पालन पोषण करना, फलों तथा पानी के स्रोतों का पता लगाना, पराग एवं मकरन्द एकत्र करना, परिवार तथा छत्तों की देखभाल, शत्रुओं से रक्षा करना इत्यादि करती है। इसकी उम्र लगभग 2-3 महीने होती है।

नरः यह रानी से छोटी एवं श्रमिक से बड़ी होती है। रानी मधुमक्खी के साथ सम्भोग के अतरिक्त यह कोई कार्य नहीं करते है। सम्भोग के तुरंत बाद इनकी मृत्यु हो जाती है। इनकी औसत आयु करीब 60 दिन की होती है।

एक मधुमक्खी के जीवन विकास की निम्न लिखित अवस्थाएँ हैं।

(1) अंडा (2) लार्वा (3) प्यूपा एवं (4) पूर्ण मधुमक्खी

जाति	अंडा (दिन)	लार्वा (दिन)	प्यूपा (दिन)	कुल अवधि (दिन)	पूर्ण अवधि
रानी	3	5	7–8	15–16	3 साल
श्रमिक	3	4–5	11–12	18–20	45 दिन
नर	3	7	14	24	2 महीना

ISSN: 3049-2211

मधुमक्खियों की प्रजातियाँः

भारत में मुख्य रूप से मधुमक्खी की चार प्रजातियाँ पाई जाती हैंः

- छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया): आकर में छोटी, जंगली, झाड़ियों में रहने वाली शहद 200 ग्राम से 2 किग्रा/वर्ष।
- पहाड़ी मधुमक्खी (एपिस डोरसाटा): आकर में बड़ी, जंगली, ऊँचाई पर छत्ता, गुस्सैल स्वाभाव शहद 20-25 किग्रा/वर्ष।
- देशी मधुमक्खी (एपिस सिराना इंडिका):देशी, पालतू, शहद 5-10 किग्रा/वर्ष।
- इटैलियन या यूरोपियन मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा): वाणिज्यिक पालन हेतु श्रेष्ठ 50-80 किग्रा/वर्ष तक।
- ट्राईगोना प्रजातिः इसे पालतू बनाया जा सकता है। लेकिन प्रति वर्ष प्रति छत्ता शहद की उपज केवल 100 ग्राम है।

इनमें से एपिस सिराना इंडिका व एपिस मेलिफेरा जाति की मधुमक्खियों को आसानी से लकड़ी के बक्सों में पाला जा सकता है।

मधुमक्खी पालन के लिए आवश्यक सामग्रीः मौन पेटिका, मधु निष्कासन यंत्र, स्टैंड, छीलन छुरी, छत्ताधार, रानी रोक पट, हाईव टूल (खुरपी) रानी रोक द्वार, नकाब, रानी कोष्ठ रक्षण यंत्र, दस्ताने, भोजन पात्र, धुआंकर और ब्रश।

आधुनिक मौन गृह में मधुमक्खी पालनः प्राचीन काल से मधुमक्खी अपना छत्ता प्राकृतिक रूप से पेड़ के खोखले, दीवार की दरारों, छज्जों, मिट्टी के घरों, लकड़ी के संदूक आदि में छत्ते बनाती है, जिससे शहद का निष्कासन करने के लिए छत्ते को काट कर निचोड़ते थे, जिसके फलस्वरुप निचोड़ते समय अण्डा, लार्वा व प्यूपा का रस भी शहद में आ जाता था और छत्ता टूट जाने पर उसका वंश ही नष्ट हो जाता था। इस प्रकार शुद्ध शहद भी प्राप्त नहीं होता था तथा मौनवंश भी नष्ट हो जाता था। इससे बचने के लिए वैज्ञानिकों ने क्रमशः शोध एवं अध्ययन करके प्रकृति में बनाये गए छत्तों के सिद्धांत के अनुरूप तथा उसी के आधार पर मधुमक्खियों को पालने हेतु मौनगृह (लकड़ी के बक्से) व शहद निष्कासन मशीन आदि उपकरणों का आविष्कार किया, जिससे मधुमक्खियों (मौनवंश) को आसानी से लकड़ी के बक्से में पाला जा सकता है।

स्थान का चयनः

- मधुमक्खी पालन के लिए स्थान चयन के लिए आवश्यक है कि 2-3 कि.मी. क्षेत्र में पेड़-पौधे बहुतायत में हों, जिनमें पराग व मकरंद वर्षभर मिल सके।
- तेज हवाओं का स्थान पर सीधा प्रभाव नहीं होना चाहिए। यदि स्थान छायादार पेड़ नही है तो वहां कृत्रिम रूप से छायादार स्थान बनाना चाहिए।
- स्थान मुख्य सड़क से थोड़ा दूर होना चाहिए। भूमि समतल व पानी का निकास उचित होना चाहिए।
- पास ही साफ एवं बहता हुआ पानी मधुमक्खी पालन के लिए आवश्यक है।
- नया लगाया हुआ बगीचा इस हेतु उचित है, ज्यादा घना बगीचा भी गर्मी के मौसम में हवा को आने जाने से रोकता है।
- स्थान के चारों तरफ तारबंदी या हेज लगाकर अवांछनीय आने वालों को रोका जा सकता है।
- एपीयरी में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 10 फुट व बक्से से बक्से की दूरी 3 फुट रखें। एक स्थान पर 50 से 100 बक्स्से तक रखे जा सकते हैं।

मधुमक्खी परिवार का उचित रखरखाव एवं प्रबंधनः मधुमक्खी परिवारों की सामान्य गतिविधियाँ 10० और 38० सेंटीग्रेट की बीच में होती है उचित प्रबंधन द्वारा प्रतिकूल परिस्थितियों में इनका बचाव आवश्यक है। उत्तम रखरखाव से परिवार शक्तिशाली एवं क्रियाशील बनाये रखे जा सकते है। मधुमक्खी परिवार को विभिन्न प्रकार के रोगों एवं शत्रुओं का प्रकोप समय समय पर होता रहता है। जिनका निदान उचित प्रबंधन द्वारा किया जा सकता है इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रकार वार्षिक प्रबंधन करना चाहिए।

शरदऋतु में मधुमक्खी का का प्रबंधनः शरद ऋतु में विशेष रूप से जब अधिक ठंड पड़ती है जिससे तापमान कभी कभी 10० सेन्टीग्रेट से नीचे तक चला जाता है। ऐसे में मौनवंश को सर्दी से बचाना जरूरी हो जाता है। सर्दी से बचने के लिए मौनपलकों को टाट की बोरी के दो तह बनाकर आंतरिक ढक्कन के नीचे बिछा देना चाहिए। यह कार्य अक्टूबर में करना चाहिए। इससे मौन गृह का तापमान एक समान गर्म बना रहता है। यह प्रारंभ हो तो पालीथिन से प्रवेश द्वार को छोड़कर पूरे बक्से को ढक देना चाहिए। या बाहर फूस या पुवाल का छप्पर टाट बना कर बक्सों को ढक देना चाहिए। इस समय मौन गृहों को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए। जहाँ भूमि सूखी हो तथा दिन भर धूप रहती हो परिणामस्वरूप मधुमक्खियाँ अधिक समय तक कार्य करेगी अक्टूबर में पशु देख लेना चाहिए की रानी अच्छी हो तथा वह साल से अधिक पुरानी तो नहीं है यदि ऐसा हो तो उस संग की नई रानी दे देनी चाहिए। जिससे शरद ऋतु में श्रमिकों की आवश्यकता बनी रहे जिसमें मौन श्रेष्ठ कार्य करती रहें। ऐसे क्षेत्र जहाँ

ISSN: 3049-2211

शीतलहर चलती हो तो इसके प्रारंभ होने से पूर्व ही यह निश्चित कर लेना चाहिए की मौन गृह में आवश्यक मात्रा में शहद और पराग है या नहीं।

यदि शहद कम है नही है तो मौन वंशी को 50:50 के अनुपात में चीनी और पानी का घोल बनाकर उबालकर ठंडा होने के पश्चात मौन गृहों के अंदर रख देना चाहिए। जिससे मौनों को भोजन की कमी न हो। यदि मौन गृह पुराने हो गये हो या टूट गये हो तो उनकी मरम्मत अक्टूबर नवम्बर तक अवश्य करा लेना चाहिए जिससे इनकी सर्दियों से बचाया जा सके। इस समय मौन गृहों को खुले स्थान पर रखना चाहिए जिससे कम समय में अधिक से अधिक सूर्य का प्रकाश मिल सके अन्यथा खुले जगह पर मौन गृहों को रखने पर ठंड लगने से शिशु मधुमक्खी के मरने का डर रहता है।

वसंत ऋतु में मौन प्रबंधनः वसंत ऋतु मधुमक्खियों के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। इस समय सभी स्थानों में पर्याप्त मात्रा में पराग और मकरंद उपलब्ध रहते हैं जिससे मौनों की संख्या दुगनी बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप शहद का उत्पादन भी बढ़ जाता है। इस समय देख रेख की आवश्यकता उतनी ही पड़ती है जितनी अन्य मौसमों में होती है। शरद ऋतु समाप्त होने पर धीरे धीरे मौन गृह की पैकिंग हटा देना चाहिए। मौन गृहों को खाली कर उनकी अच्छी तरह से सफाई कर लेना चाहिए। पेड़ों पर लगे मौन को भी मिलाकर एक कर देना चाहिए। संभव हो तो 500 ग्राम का पाउडर दरारों में करना चाहिए जिससे कि माइट को मारा जा सके। मौन गृहों पर बाहर से सफेद पेंट करा देना चाहिए जिससे बाहर से आने वाली गर्मी में मौन गृहों का तापमान कम रह सके। वसंत ऋतु प्रारंभ में मौन वंशों को पौष्टिक भोज्य देने से उनकी संख्या और क्षमता बढ़ती है। जिससे अधिक से अधिक उत्पादन लिया जा सके। यदि मौन गृह में मौनों की संख्या बढ़ गयी हो तो मोम लगा हुआ अतिरिक्त फ्रेम देना चाहिए। जिससे सो मधुमक्खियाँ छत्ते बना सके एवं छत्तों में शहद भर गया हो तो मधु निष्कासन यंत्र से शहद को निकाल लेना चाहिए जिससे मधुमक्खियाँ अधिक क्षमता के साथ कार्य कर सके यदि नरों की संख्या बढ़ गयी हो इनकी संख्या को नियंत्रित कर देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में मौन प्रबंधनः ग्रीष्म ऋतु में मौनो की देखभाल ज्यादा जरुरी होती है जिन क्षेत्रो में तापमान 40॰ सेंटीग्रेट से उपर तक पहुँच जाता है। वहां पर मौन गृहों को किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए। लेकिन सुबह सूर्य की रौशनी मौन गृहों पर पड़नी आवश्यक है जिससे मधुमक्खियाँ सुबह से ही सक्रिय होकर अपना कार्य करना प्रारम्भ कर सकें। इस समय कुछ स्थानों जहाँ पर बरसीम, सूर्यमुखी इत्यादि की खेती होती है। वहाँ शहद उत्पदान किया जा सकता है। पानी को उचित व्यवस्था मधुवाटिका के आस पास होना चाहिये। मौनों को लू से बचने के लिए छप्पर का प्रयोग करना चाहिये जिससे गर्म हवा सीधे मौन गृहों के अंदर न घुस सके अतिरिक्त फ्रेम को बाहर निकल कर उचित भण्डारण करना चाहिये। जिससे मोमी पतंगे के प्रकोप से बचाया जा सके मौन वाटिका में यदि छायादार स्थान न हो तो बक्से के उपर छप्पर या पुआल डालकर उसे सुबह शाम भिगोते रहना चाहिये। जिससे मौन गृह का तापमान कम बना रहे कृत्रिम भोजन के रूप में 50:50 के अनुपात में चीनी और पानी के उबल कर ठंडा होने अपर मौन गृह के अंदर कटोरी या फीडर में रखना चाहिये। मौन गृह के स्टैंड की कटोरियों में प्रतिदिन साफ और तजा पानी डालना चाहिए।

वर्षा ऋतु में मौन प्रबंधनः वर्षा ऋतु में तेज वर्षा, हवा और शत्रुओं जैसे चींटियाँ, मोमी पतंगा, पक्षियों का प्रकोप होता है मोमि पतंगों के प्रकोप को रोकने के लिए छतो को हटा दें। फ्लोर बोर्ड को साफ करें तथा गंधक पाउडर छिडके चीटो को रोकथाम के लिए स्टैंड को पानी भरा बर्तन में रखे तथा पानी में दो तीन बूंदें काले तेल की डालें। मोमी पतंगों से प्रभावित छत्ते, पुराने काले छत्ते एवं फफूंद लगे छत्तों को निकल कर अलग कर देना चाहिए।

मधुमक्खी परिवारों का विभाजन एवं एकीकरण

विभाजनः अच्छे मौसम में मधुमक्खियों की संख्या बढती है तो मधुमक्खी परिवारों का विभाजन करना चाहिये। ऐसा न किये जाने पर मक्खियाँ घर छोड़कर भाग सकती है। विभाजन के लिए मूल परिवार के पास दूसरा खाली बक्सा रखे तथा मूल मधुमक्खी परिवार से 50 प्रतिशत अण्डे, शहद व पराग वाले फ्रेम रखे रानी वाला फ्रेम भी नये बक्से में रखे मूल बक्से में यदि रानी कोष्ठ हो तो अच्छा है अन्यथा श्रमिक मक्खियाँ स्वयं रानी कोष्ठक बना लेगी तथा 16 दिन बाद रानी बन जाएगी। दोनों बक्सों को रोज एक फीट एक दुसरे से दूर करते जाये और नया बक्सा तैयार हो जायेगा।

एकीकरणः जब मधुमक्खी परिवार कमजोर हो एवं रानी रहित हो तो ऐसे परिवार को दूसरे परिवार में जोड़ दिया जाता है। इसके लिए एक अखबार में छोटे छोटे छेद बनाकर रानी वाले परिवार को शिशु खण्ड के उपर रख लेते है तथा मिलाने वाले परिवार एक सुपर फ्रेम लगाकर इसे रानी वाले परिवार के उपर रख दिया जाता है। अखबार के उपर थोडा शहद छिड़क दिया जाता है जिससे 10-12 घंटों में दोनों परिवारों की गंध आपस में मिल जाती है बाद में सुपर और अखबार को हटाकर फ्रेमों को शिशु खण्ड में रखा जाता है।

मधुमक्खी परिवार स्थानान्तरणः

मधुमक्खी परिवार का स्थानान्तरण करते समय निम्न सुचनाए ध्यान रखें-

1. स्थानांतरण की जगह पहले से ही सुनिश्चित करें।

ISSN: 3049-2211

2. स्थानांतरण की जगह दुरी पर हो तो मौन गृह में भोजन का पर्याप्त व्यवस्था करें।

3. प्रवेश द्वार पर लोहे की जाली लगा दें तथा छत्तों में अधिक शहद हो तो उसे निकल लें और बक्सो को बोरी से कील लगाकर सील कर दें।

4. बक्सों को गाड़ी में लम्बाई की दिशा में रखें तथा परिवहन में कम से कम झटके लें ताकि छत्ते में क्षति न पहुचे।

5. गर्मी में स्थनान्तरण करते समय बक्सों के उपर पानी छिडकते रहे और यात्रा रात के समय ही करें।

6. नई जगह पर बक्सों को लगभग 8-10 फुट की दुरी पर तथा मुंह पूर्व - पश्चिम दिशा की तरफ रखें।

7. पहले दिन बक्सों का निरीक्षण न करें दूसरे दिन धुंआ देने के बाद मक्खियाँ की जाँच करनी चाहिये तथा सफाई कर देनी चाहिए।

मधुमक्खियों के भोजन स्रोत

माह	भोजन स्रोत
जनवरी	सरसों, तोरियाँ, कुसुम, चना, मटर, राजमा, अनार, अमरुद, कटहल, यूकेलिप्टस
फरवरी	सरसों, तोरियाँ, कुसुम, चना, मटर, राजमा, अनार, अमरुद, कटहल, यूकेलिप्टस, प्याज, धनिया, शीशम
मार्च	कुसुम, सूर्यमुखी, अलसी, बरसीम, अरहर, मेथी, मटर, भिन्डी, धनिया, आंवला, नींबू, जंगली जलेबी, शीशम, यूकेलिप्टस, नीम
अप्रैल	सूरजमुखी, बरसीम, अरण्डी, रामतिल, भिन्डी, मिर्च, सेम, तरबूज, खरबूज, करेला, लौकी, जामुन, नीम, अमलतास
मई	तिल, मक्का, सूरजमुखी, बरसीम, तरबूज, खरबूज, खीरा, करेला, लौकी, इमली, कद्दू, करंज, अर्जुन, अमलतास
जून	तिल, मक्का, सूरजमुखी, बरसीम, तरबूज, खरबूज, खीरा, करेला, लौकी, इमली, कद्दू, बबूल, अर्जुन, अमलतास
जुलाई	ज्वार, मक्का, बाजरा, करेला, खीरा, लौकी, भिन्डी, पपीता
अगस्त	ज्वार, मक्का, सोयाबीन, मूँग, धान, टमाटर, बबूल, आंवला, कचनार, खीरा, भिन्डी, पपीता
सितम्बर	बाजरा, सनई, अरहर, सोयाबीन, मूँग, धान, रामतिल, टमाटर, बरबटी, भिन्डी, कचनार, बेर
अक्टूबर	सनई, अरहर, धान, अरण्डी, रामतिल, यूकेलिप्टस, कचनार, बेर, बबूल
नवम्बर	सरसों, तोरियाँ, मटर, अमरुद, शहजन, बेर, यूकेलिप्टस, बोटलब्रश
दिसम्बर	सरसों, तोरियाँ, राई, चना, मटर, यूकेलिप्टस, अमरुद

शहद व मोम निष्कासन व प्रसंस्करणः मधुमक्खी पालन का मुख्य उद्देश्य शहद एवं मोम उत्पादन करना होता है। बक्सों में स्थित छत्तों में 75-80 प्रतिशत कोष्ठ मक्खियों द्वारा मोमी टोपी से बंद कर देने पर उनसे शहद निकाला जाए इन बंद कोष्ठों से निकाला गया शहद परिपक्व होता है। बिना मोमी टोपी के बंद कोष्ठों का शहद अपरिपक्व होता है जिनमे पानी की मात्रता अधिक होती है। मधु निष्कासन का कार्य साफ मौसम में दिन में छत्तों के चुनाव से आरम्भ करके शाम के समय शहद निष्कासन प्रक्रिया आरम्भ करना चाहिए अन्यथा मखियाँ इस कार्य में बाधा उत्पन्न करती है।

शहद से भरे छत्तों को बक्से में रख कर ऐसे सभी बक्सों को कमरे या खेत में बड़ी मच्छरदानी के अंदर रखकर मधु निष्कासन करना चाहिए। अब छीलन चाकू को गर्म पानी में डुबोकर एवं कपडे से पोंछकर चाटते से मोम की टोपियाँ हटा देनी है। छत्ते को शहद निकलने वाली मशीन में रखकर यंत्र को घुमाकर कर बारी बारी से छत्तों को पलटकर दोनों ओर से शाहद निकला जाता है। इस शहद को मशीन से निकलकर टंकी में लगभग 48 घंटे तक पड़ा रहने देते है। ऐसा करने पर शहद में मिले हवा के बुलबुले तथा मोम इत्यादि शहद की उपरी सतह पर तथा मैली वस्तुएं पेंदी पर बैठ जाती है। शहद को पतले कपडे से छानकर स्वच्छ एवं सुखी बोतलों में भरकर बेचा जा सकता है।

शहद प्रसंस्करण (घरेलू विधि) : इस प्रकार निष्कासित शहद में अशुधियां जैसे पानी की अधिक मात्रा, पराग, मोम एवं कीट के कुछ भाग रह सकता है। इस अशुद्धियाँ हटाने के लिए शहद का प्रसंस्करण जरुरी होता है। इसके लिए बड़े बर्तन में पानी रखकर गर्म किया जाता है तथा छोटे कपड़े से छान कर रखते हैं। शहद को चम्मच द्वारा हिलाते रहे ताकि सारा शहद एक समान गर्म हो जब शहद 60॰ सेन्टीग्रेट तक गर्म हो जाए तब शहद वाले बर्तन पानी वाले बर्तन से अलग कर देते हैं।

इस गर्म किये गए शहद की बारीक छलनी द्वारा छानकर टोंटी लगे स्टील के ड्रम में भर देते है। जब शहद ठंडा हो जाये तो उसके उपर जमी मोम के पारत को करछी से हटा कर टोंटी द्वारा शहद को बोतलों में भरे लिया जाता है।

मोम का निष्कासन एवं प्रसंस्करणः पुराने छत्तों से मोम काटकर उबलते पानी में डाल कर पिघला लेते है। उपर तैरते हुए मोम को निकल लिया जाता है इस मोम को साफ करने हेतु २-३ बार शहद पानी में पिघलाकर ठंडा कर लेते है। प्रत्येक बार जमे हुए मोम की तलहटी पर लगी गन्दी चाकू से काटकर अलग करते रहना चाहिए।

मधुमक्खियों की बिमारियाँ और उसके शत्रुः मधुमक्खियों के सफल प्रबंधन के लिए यह आवश्यक है कि उनमे लगने वाली बिमारियों और उनके शत्रुओं के बारे में पूर्ण जानकारी होनी आवश्यक है। जिससे उनसे होने क्षति को बचाकर शहद उत्पादन और आय में बढ़ोतरी की जा सकती है।

ISSN: 3049-2211

नाशीजीवः

यूरोपियन फाउलबुरडः यह एक जीवाणु मैलिसोकोकस प्ल्युटान से होने वाला एक संक्रामक रोग है। इसका रंग गहरा होता है तथा इनसे प्रौढ़ मक्खी भी नही निकलती है। इस बीमारी की पहचान के लिए एक माचिस की तिल्ली को लेकर मरे हुए डिम्भक के शरीर में चुभोकर बहर की ओर खींचने पर एक धान्गनुमा संरचना बनती है। जिसके आधर पर इस बीमारी की पहचान की जा सकती है।

रोकथामः प्रभावित वंशो को मधु वाटिका से अलग कर देना चाहिए। प्रभावित वंशों के फ्रेम और अन्य समान का संपर्क किसी दूसरे स्वस्थ वंश से नही होने देना चाहिए। प्रभावित मौन वंश को रानी विहीन कर देना चाहिये। तथा कुछ महीनो बाद रानी देना चाहिये। संक्रमित छत्तों का इस्तेमाल नही करना चाहिय। बल्कि उन्हें पिघलाकर मोम बना देना चाहिए संक्रमित वंशो को टेरामईसिन की 250 मिग्रा0 मात्रा प्रति 5 लीटर चीनी के घोल के साथ ओक्सीटेट्रासईक्लिन 3.25 मिग्रा0 प्रति गैलन के हिसाब से देना चाहिये।

अमेरिकन फाउलबूरडः यह भी एक जीवाणु बैसिलस लारवी के द्वारा होने वाला एक संक्रामक रोग है। जो यूरोपियन फाउलबूरड के समान होता है यह बीमारी कोष्ठक बंद होने के पहले ही लगती है जिसे कोष्ठक बंद ही नही होते यदि बंद भी हो जाते है तो उनके ढक्कन में छिद्र देखे जा सकते है। इसके अंदर मर हुआ डीम्भक भी देखा जा सकता है। जिससे सडी हुई मछली जैसी दुर्गन्ध आती है इनका आक्रमण गर्मियों में या उसके बाद होता है।

रोकथामः यूरोपियन फाउलबूरड की तरह।

नोसेमा रोगः यह एक प्रोटोजवा नोसेमा एपिस से होता है इस बीमारी से मधुमक्खियो की पहचान व्यवस्था बिगड़ जाती है। रोगग्रसित मधुमक्खियाँ पराग की अपेक्षा केवल मकरंद ही एकत्र करना पसंद करती है। ग्रसित रानी नर सदस्य ही पैदा करती है तथा कुछ समय बाद मर भी सकती है। जब मधुमक्खियों में पेचिस, थकान, रेंगने तथा बाहर समूह बनाने जैसे लक्षण दिखे तो इस रोग का प्रकोप समझना चाहिए।

रोकथामः फ्युमिजिलिन-बी का 0-5 से 3 मिग्रा0 मात्रा प्रति 100 मिली0 घोल के साथ मिला कर देना चाहिए। वाईसईकलो हेक्साईल अमोनियम प्युमिजिल भी प्रभावकारी औषधि है।

सैकब्रूडः यह रोग भारतीय मौन प्रजातियों में बहुतायात में पाया जाता है। यह एक विषाणु जनित रोग है जो संक्रमण से फैलता है। संक्रमित वंशों के करना चाहिए ऐसे मौन गृह से फ्रेम की संख्या कम कर देना चाहिए। साथ ही मौन गृह में मधुमक्खियों की संख्या बढ़ाने के उपाय करना चाहिए। नर कोष्ठक वाले फ्रेम को बाहर निकाल देना चाहिए तथा उसमे उपस्थित कोष्ठकों में डिम्भक खुले अवस्था में ही मर जाते है या बंद कोष्ठको में दो छिद्र बने होते है इससे ग्रसित डिम्भको का रंग हल्का पीला हो जाता है अंत में इसमें थैलीनुमा आकृति बन जाती है।

रोकथामः एक बार इस बीमारी का संक्रमण होने के बाद इसकी रोकथाम बहुत कठिन हो जाती है। इसका कोई प्रभावी उपाय नही है संक्रमण होने पर प्रभावित वंशों को मधु वाटिका से हटा देना चाहिए। तथा संक्रमित वंशो में प्रयुक्त सामग्री का कोई भी भाग दुसरे वंशो तक नही ले जाने देना चाहिए। वंशो को कुछ समय रानी विहीन कर देना चाहिए। टेरामईसिन की 250 मिग्रा0 मात्रा प्रति 4 लीटर चीनी के घोल में मिलकर खिलाया जाये तो रोग का नियंत्रण हो जाता है। गंभीर रूप से प्रभावित वंशो को नष्ट कर देना चाहिए।

एकेराईनः यह आठ पैरो वाला बहुत ही छोटा जीव है। इस रोग में श्रमिक मधुमक्खियाँ मौन गृह के बहर एकत्रित होती है। इनके पंख कमजोर हो जाते है जिससे ये उड़ नही पाती है या उड़ते उड़ते गिर जाती है। और दोबारा नही उड़ पाती है इसका प्रकोप होने पर संक्रमित वंशों को अलग कर गंधक का धुंआ देना चाहिए। गंधक की 200 मिग्रा0 मात्रा प्रति फ्रेम के हिसाब से बुरकाव करना चाहिए। डिमाईट या क्लोरोबेन्जिलेट जो क्रमशः पीके और फल्बेकस के नाम से बाजार में आता है को धुंए के रूप में देना चाहिए।

यह अष्टपादी जीव कछुए के आकार का होता है। जो मधुमक्खी के वाह्य परजीवी के रूप में नुकसान पहुचता है प्रौढ़ मादा अष्टपादी 5 दिन पुराने मौन लारवा वाले खण्ड में 2 से 5 अंडे देती है जिनमें एक या दो दिन बाद कोष्ठक बंद हो जाते है। इसके ठीक बाद माईट के अन्डांे से निम्फ निकलते है। और मधुमक्खी के लारवा पर भोजन लेकर उसे कमजोर बना देते है या अपांग बनाकर उसे मार देते है। इस अष्टपादी का ज्यादा प्रकोप होने पर नए श्रमिक बनने बंद हो जाते है। जिससे मौन वंश कमजोर हो जाते है जिससे कुछ समय बाद पूरा वंश समाप्त हो जाता है।

रोकथामः प्रायः ऐसा देखने में आता है की मौनपालक जाने अनजाने मौनांे को बचाने के लिए जहरीले रसायनों का प्रयोग करते है जिससे काफी मात्रा में मौन मर जाती है। परिणामस्वरुप मौन पलकों को लाभ के बजे नुकसान उठाना पड़ता है इनके प्रबंध के लिए निम्नलिखित उपाय

सभी नर शिशुओं को मार देना चाहिए। तथा दोबारा इस फ्रेम को मौन परिवार में नहीं देना चाहिए। सल्फर का 5 ग्राम पाउडर प्रति वंश के हिसाब से एक सप्ताह के अंतर पर बुरकाव करना चाहिए। फार्मिक एसिड

ISSN: 3049-2211

की 1 मिली0 मात्रा एक छोटी प्लास्टिक की शीशी में डाल कर उसके ढक्कन में एक बारीक सुराख बनाकर प्रत्येक मौन गृह में रख देना चाहिए। साथ ही मौन गृह में भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करना चाहिए।

ट्रोपीलेइलेप्स क्लेरीः यह माईट जंगली मधुमक्खी का मुख्य रूप से परजीवी है इसका प्रकोप इटैलियन प्रजाति में भी होता है। प्रभावित वंश में प्यूपा की अवस्था में बंद कोष्ठक में छिद्र देखे जा सकते है। कुछ प्यूपा मर जाते है जिनको साफ कर दिया जाता है जिससे कोष्ठक खाली हो जाते है। जो डिम्भक बच जाते है उनका विकास विकृत हो जाता है। जैसे पंख, पैर या उदर का अपूर्ण विकास होना इसका लक्षण माना जाता है।

रोकथामः एकेराईन बीमारी की तरह ही इसकी रोकथाम की जाती है।

वरोआ माईटः सर्वप्रथम यह माईट भारतीय मौन में ही प्रकाश में आई थी लेकिन अब यह मेलिफेरा में भी देखी जाती है। इसका आकार 1.2 से 1.6 मिमी0 है यह बाह्यपरजीवी है जो वक्ष और उदर के बिच से मौन का रक्त चूसती है मादा माईट कोष्ठक बंद होने से पहले ही इसमें घुसकर 2 से 5 अंडे देती है जिससे 24 घंटे में शिशु लारवा निकलता है तथा 48 घंटे में यह प्रोटोनिम्फ में बदल जाता है।

नियंत्रणः फार्मिक एसिड की 5 मिली0 प्रतिदिन तलपट में लगाने से इसका नियंत्रण हो जाता है। अन्य उपाय एकेराईन के तरह ही करनी चाहिए।

मोमी पतंगाः यह पतंगा मधुमक्खी वंश का बहुत बड़ा शत्रु है यह छत्तां की मोम को अनियमित आकार का सुरंग बनाकर खाता रहता है अंदर ही अंदर छत्ता खोखला हो जाता है। जिससे मधुमक्खियाँ छत्ता छोड़कर भाग जाती है इनके द्वारा सुरंगों के उपर टेढ़ी मेढ़ी मकड़ी के जाल जैसे संरचना देखी जा सकती है। इनके प्रकोप की आशंका होने पर छतो को 5 मिनट के लिए तेज धूप में रख देना चाहिये। जिससे इनके उपस्थित मोमी पतंगा की सूड़ियाँ बाहर आकार धूप में मर जाती है। इस प्रकार इसके प्रकोप का आसानी से पता चल जाता है साथ ही सूड़ियाँ नष्ट हो जाती है।

रोकथामः इसका प्रकोप वर्ष के दिनों में जब मधुमक्खियो की संख्या कम हो जाती है जब होता हैं। जब मौन ग्रगो में आवश्कता से अधिक फ्रेम होते है तो इसके प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए अतिरिक्त फ्रेम को मौन गृहों से बहार उचित स्थान पर भंडारित करना चाहिए वर्ष में प्रवेश द्वार संकरा कर देना चाहिए। मौन गृह में प्रवेश द्वार के अलावा अन्य दरारों को बंद कर देना चाहिए। कमजोर वंशो को शक्तिशाली वंशो के साथ मिला देना चाहिए।

शहद पतंगाँः यह बड़े आकार का पतंगा होता है। जिसका वैज्ञानिक नाम एकेरोंशिया स्टाइक्स है यह मौन गृहों में घुस कर शहद खाता है अधिकतर मधुमक्खियाँ इस पतंगे को मार देती है इस कीट से ज्यादा नुकसान नहीं होता है।

चींटियाँः इनका प्रकोप गर्मी और वर्षा ऋतु में अधिक होता है जब वंश कमजोर हो तो इनका नुकसान बढ़ जाता है। इनसे बचाव के लिए स्टैंड के कटोरियों में पानी भरकर उसमे कुछ बूंद किरोसिन आयल भी डाल देनी चाहिए। जिससे चींटियो को मौन गृहों पर चढ़ने से बचाया जा सके।

■■■

ISSN: 3049-2211

जलवायु परिवर्तन का फूलों की किस्मों पर प्रभाव उत्पादकों के अनुकूलन के उपाय

डॉ. सुरेंद्र लाल: उद्यान (पुष्प कृषि एवं परिदृश्य)

पल्लवी भारती: शोध विद्यार्थी, पुष्प कृषि एवं परिदृश्य

कृषि महाविद्यालय, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर

जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते तापमान, अनियमित वर्षा और चरम मौसम घटनाएँ फूलों की किस्मों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं। इन बदलावों से निपटने के लिए, उत्पादक जलवायु-प्रतिरोधी किस्मों का चयन, उन्नत सिंचाई तकनीकें और नियंत्रित पर्यावरणीय खेती (ग्रीनहाउस) अपनाकर अनुकूलन कर रहे हैं। इसके अलावा, वर्षा जल संचयन और मिट्टी की नमी की निगरानी जैसे उपायों का उपयोग भी बढ़ रहा है। ये कदम फूलों की खेती को स्थिर और अधिक प्रभावी बनाने में मदद कर रहे हैं।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन हमारे समय की एक प्रमुख वैश्विक चुनौती है, जो अर्थव्यवस्था के लगभग हर क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। पुष्पवर्धन उद्योग, जिसमें फूलों और सजावटी पौधों की खेती और वाणिज्यिक उपयोग के लिए व्यापार शामिल है। मौसम के पैटर्न में उतार-चढ़ाव, बढ़ते तापमान और अनियमित वर्षा के कारण फूलों के उत्पादक विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, जो फूलों की किस्मों की सेहत और उनके उत्पादन की स्थिरता को प्रभावित कर रहे हैं। हालांकि, अन्य उद्योगों की तरह, फूलों के उत्पादक भी इन बदलावों का सामना करने के लिए नए तरीके, नई तकनीकों और खेती के तरीकों को अपनाकर अनुकूलित हो रहे हैं। इस लेख में, हम जलवायु परिवर्तन के फूलों की किस्मों पर प्रभाव और उत्पादकों के अनुकूलन के तरीकों का अध्ययन करेंगे।

फूलों की खेती पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन फूलों की खेती पर कई तरीकों से असर डालता है, जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में बदलाव और चरम मौसम की घटनाओं की आवृत्ति। इन परिवर्तनों के कारण फूलों की कई प्रजातियों के विकास चक्र में व्यवधान उत्पन्न होता है, जिससे पारंपरिक खेती के तरीके कम पूर्वानुमानित और प्रभावी होते जा रहे हैं।

तापमान में बदलाव और बढ़ते मौसम

बढ़ते तापमान का फूलों की खेती पर सबसे स्पष्ट प्रभाव देखा जा रहा है। कई फूल तापमान में उतार-चढ़ाव के प्रति संवेदनशील होते हैं, और सामान्य से अधिक गर्मी के मौसम में ये पहले या बाद में खिल सकते हैं। कुछ क्षेत्रों में, फूल सीजन से पहले खिल सकते हैं और फिर अचानक ठंडी हवाओं के कारण खराब हो सकते हैं। दूसरी ओर, लंबे समय तक गर्मी के कारण फूलों की उम्र कम हो सकती है, जिससे उनकी बिक्री में कमी आ सकती है।

ISSN: 3049-2211

इसके अतिरिक्त, तापमान में बदलाव कुछ किस्मों के बढ़ने के मौसम को भी बदल सकता है। वे फूल जो विशेष जलवायु में अच्छे से पनपते थे, अब बढ़ते तापमान के कारण उन परिस्थितियों में विकसित नहीं हो पा रहे हैं। विशेष रूप से उच्च ऊंचाई वाले या ठंडी जलवायु वाले फूल, जैसे कुछ पर्वतीय प्रजातियाँ, अब बढ़ते तापमान के कारण अस्तित्व में आने में मुश्किल महसूस कर रही हैं।

1. पानी की उपलब्धता और वर्षा के पैटर्न

जलवायु परिवर्तन ने वर्षा के पैटर्न में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं, जिसके कारण कई क्षेत्रों में सूखा और बाढ़ की घटनाएँ बढ़ गई हैं। ये बदलाव फूल उत्पादकों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं, क्योंकि वे सिंचाई के लिए नियमित पानी की आपूर्ति पर निर्भर होते हैं।

- **सूखा**

पानी की कमी वाले क्षेत्रों में लंबे समय तक सूखा पड़ने से जल संसाधनों पर और दबाव बढ़ सकता है। सूखा फूलों को उचित जल आपूर्ति से वंचित कर सकता है, जिससे उनकी वृद्धि और गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। जिन फूलों की प्रजातियाँ पानी की कमी के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, वे इन क्षेत्रों में कठिनाई का सामना कर सकती हैं।

- **बाढ़**

दूसरी ओर, भारी वर्षा और बाढ़ वाले क्षेत्रों में फूलों की खेती के लिए समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। जलभराव से फूलों की कोमल जड़ों को नुकसान हो सकता है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और बीमारियाँ फैल सकती हैं। फूल उत्पादकों के लिए पानी की उपलब्धता को सही तरीके से प्रबंधित करना और सिंचाई और जल निकासी प्रणालियों का सही तरीके से उपयोग करना अब अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है।

2. चरम मौसम की घटनाएँ

जलवायु परिवर्तन से चरम मौसम की घटनाएँ, जैसे तूफान, चक्रवात और लू की लहरें बढ़ रही हैं। ये अप्रत्याशित घटनाएँ फूलों की फसलों पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक तूफान फूलों के पौधों को शारीरिक रूप से नुकसान पहुंचा सकता है, जैसे कि तने टूट जाना, पौधों का उखड़ जाना या पंखुड़ियों का झड़ जाना। इसी तरह, तीव्र लू की लहर फूलों को सूखा और मुरझा सकती है, खासकर जब उत्पादक फूलों को पर्याप्त पानी या छांव नहीं दे पाते।

इसके अलावा, मौसम में अप्रत्याशित बदलाव फूलों के खिलने के समय को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे उत्पादकों के लिए फूलों के अच्छे समय पर खिलने का पूर्वानुमान करना कठिन हो सकता है। यह न केवल फूलों की सौंदर्यता को प्रभावित कर सकता है, बल्कि उनकी बाजार मूल्य को भी घटा सकता है, क्योंकि फूलवाले और थोक व्यापारी समय पर फूलों के उत्पादन पर निर्भर होते हैं।

3. कीट और रोग

जलवायु परिवर्तन फूलों के कीटों और रोगों के प्रसार और व्यवहार को भी प्रभावित कर सकता है। गर्मी और नमी के बदलाव से कुछ कीटों और रोगाणुओं के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बन सकती हैं। उच्च तापमान और बदलते आर्द्रता के कारण कुछ कीटों, जैसे द्रुमयूका (एफिड्स), लता कीट (थ्रिप्स) और मकड़ी आदि की संख्या बढ़ सकती है। कुछ कीट जो पहले कुछ विशेष क्षेत्रों तक सीमित थे, अब बढ़ते तापमान के कारण नए क्षेत्रों में फैल सकते हैं। ये कीट फूलों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, पैदावार को घटा सकते हैं और रासायनिक कीटनाशकों की जरूरत बढ़ा सकते हैं।,

इसी तरह, बढ़ती वर्षा और नमी से फंगल रोगों का प्रसार भी हो सकता है, जैसे पाउडरी मोल्ड और बोट्रिटिस, जो गीली परिस्थितियों में पनपते हैं। ये रोग फूलों की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं और बड़े पैमाने पर फसल हानि का कारण बन सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप, फूल उत्पादकों को इन बदलते परिस्थितियों के अनुरूप अपनी कीट नियंत्रण पद्धतियों को अनुकूलित करना पड़ सकता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए उत्पादकों द्वारा अपनाए गए उपाय

जबकि जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न चुनौतियाँ महत्वपूर्ण हैं, कई फूल उत्पादक इन बदलावों से निपटने के लिए सक्रिय रूप से अनुकूलन कर रहे हैं, नए तरीके अपना रहे हैं, नई तकनीकों को अपना रहे हैं और खेती के तरीकों में बदलाव कर रहे हैं। यहां हम देखेंगे कि उत्पादक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करने के लिए क्या कदम उठा रहे हैंरू

1. जलवायु-प्रतिरोधी फूलों की किस्मों को अपनाना

जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के लिए सबसे सीधे तरीकों में से एक है ऐसी फूलों की किस्मों का चयन करना जो तापमान में बदलाव, पानी की कमी और कीटों के प्रति अधिक प्रतिरोधी हों। वर्षों से, प्रजनकों ने और नए फूलों की किस्में विकसित की हैं जो अधिक चरम मौसम की परिस्थितियों का सामना कर सकती हैं।

- गर्मी-प्रतिरोधी किस्में उन क्षेत्रों के लिए जहां उच्च तापमान है, उत्पादक अब गर्मी-प्रतिरोधी फूलों की किस्मों की ओर बढ़ रहे हैं। ये किस्में उच्च तापमान को सहन करने के लिए उत्पन्न की गई हैं और वे मौसम के अंत में, जब तापमान थोड़ा ठंडा हो,

ISSN: 3049-2211

फूल सकती हैं, जिससे उत्पादक अपनी खेती का मौसम बढ़ा सकते हैं।

- सूखा-प्रतिरोधी फूल उन क्षेत्रों में जहां पानी की कमी एक समस्या है, सूखा-प्रतिरोधी फूलों की किस्में बढ़ रही हैं। ये किस्में कम पानी में पनप सकती हैं और सूखा होने की स्थिति में भी जीवित रह सकती हैं। उदाहरण के लिए, सुकुलेंट्स और अन्य सूखा-प्रतिरोधी प्रजातियाँ अब सजावट और फूलों की सजावट में अधिक उपयोग हो रही हैं।
- रोग-प्रतिरोधी किस्में बढ़ते कीटों और रोगों के खतरे का सामना करने के लिए, फूलों मैं प्रजनक से रोग-प्रतिरोधी किस्में विकसित कर रहे हैं। ये फूल सामान्य रोगाणुओं के खिलाफ बेहतर सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं, जिससे रासायनिक उपचार की आवश्यकता कम हो जाती है और पौधों की सेहत बेहतर बनी रहती है।

2. ग्रीनहाउस और नियंत्रित पर्यावरण खेती

चरम मौसम की घटनाओं के प्रभाव को कम करने के लिए, कई फूल उत्पादक अब ग्रीनहाउस और नियंत्रित पर्यावरण खेती (सीईए) को अपनाते हुए फूलों की खेती कर रहे हैं। ग्रीनहाउस एक नियंत्रित वातावरण प्रदान करते हैं जो पौधों को कठोर मौसम, अत्यधिक तापमान और कीटों से बचाता है। स्वचालित प्रणालियों का उपयोग करके तापमान, आर्द्रता, रोशनी और सिंचाई को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे फूलों को वर्ष भर सर्वोत्तम परिस्थितियों में उगाया जा सकता है।

ग्रीनहाउस पानी का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करते हैं, क्योंकि सिंचाई प्रणालियाँ सटीक रूप से नियंत्रित की जा सकती हैं और पानी को पुनः उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सीईए प्रणालियाँ, जिनमें हाइड्रोपोनिक्स और एरोपोनिक्स जैसी उन्नत तकनीकें शामिल हैं, फूलों को बिना मिट्टी के अंदर उगाने की अनुमति देती हैं, जिससे फूलों के उत्पादन का पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।

3. पानी प्रबंधन और संरक्षण तकनीकें

जलवायु परिवर्तन के अनुरूप ढालने में पानी का प्रभावी प्रबंधन महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ सूखा पड़ने की संभावना हो। फूल उत्पादक पानी बचाने के लिए कई प्रकार की पानी संरक्षण तकनीकों को अपना रहे हैं।

- ड्रिप सिंचाईरू ड्रिप सिंचाई प्रणालियाँ पानी को सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचाती हैं, जिससे पानी का नुकसान वाष्पीकरण या बहाव के रूप में कम हो जाता है। यह तरीका फूलों की खेती के लिए विशेष रूप से प्रभावी है, क्योंकि इससे पानी की बर्बादी कम होती है और पौधों को सही मात्रा में पानी मिलता है।
- वर्षा जल संचयनरू कुछ फूल उत्पादक अब वर्षा जल संचयन प्रणालियों में निवेश कर रहे हैं, ताकि सूखे के समय उपयोग के लिए वर्षा का पानी जमा किया जा सके। इस तकनीक से नगरपालिका जल आपूर्ति पर निर्भरता कम होती है और फूलों की फसलों के लिए जल का अधिक स्थिर स्रोत उपलब्ध होता है।
- मिट्टी की नमी की निगरानीरू उन्नत मिट्टी नमी सेंसर और मौसम पूर्वानुमान उपकरणों की मदद से उत्पादक मिट्टी की स्थिति को अधिक सटीक रूप से मॉनीटर कर सकते हैं। इस तरह वे यह जान सकते हैं कि कब मिट्टी सूखी है और कब सिंचाई की जरूरत है, जिससे पानी का उपयोग कम किया जा सकता है, जबकि पौधों की सेहत बनाए रखी जा सकती है।

4. फूलों की फसल विविधता

जलवायु परिवर्तन से संबंधित जोखिमों का सामना करने के लिए, कई फूल उत्पादक अब अपनी फसल की विविधता बढ़ा रहे हैं। फूलों की किस्मों का मिश्रण उगाना, जिनकी अलग-अलग उगाने की आवश्यकताएँ होती हैं, उत्पादकों को बदलते मौसम की परिस्थितियों के साथ अनुकूलित होने का मौका देता है और फसल विफलता के जोखिम को कम करता है। उदाहरण के लिए, एक उत्पादक गर्मी-प्रतिरोधी प्रजातियाँ और ठंडे मौसम में बढ़ने वाली फूलों की किस्में दोनों उगा सकता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि कुछ फसलें मौसम के असामान्य पैटर्न के बावजूद अच्छे से बढ़ें।

5. जलवायु डेटा और प्रौद्योगिकी का उपयोग

नई तकनीकों की मदद से, फूल उत्पादकों को अधिक सटीक जलवायु डेटा प्राप्त करने की सुविधा मिल रही है, जिससे उनके निर्णय अधिक सूझबूझ वाले होते हैं। जलवायु मॉडलिंग, मौसम स्टेशनों और उपग्रह इमेजरी जैसे उपकरणों का उपयोग करके, उत्पादक बदलते मौसम पैटर्न की पूर्वानुमान लगाने और चरम घटनाओं के लिए पूर्व तैयारी करने में सक्षम हो रहे हैं।

इसके अलावा, सटीक कृषि तकनीकें, जिनमें ड्रोन, सेंसर और स्वचालित प्रणालियाँ शामिल हैं, उत्पादकों को खेती के हर पहलू को अनुकूलित करने की अनुमति देती हैं। ये तकनीकें मिट्टी की सेहत, पौधों की वृद्धि और पर्यावरणीय स्थितियों की निगरानी करने में मदद करती हैं, जिससे उत्पादकों को जलवायु परिवर्तन के अनुसार त्वरित अनुकूलन की सुविधा मिलती है।

ISSN: 3049-2211

निष्कर्ष

फूलों की किस्मों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव निर्विवाद रूप से देखा जा रहा है, क्योंकि बढ़ते तापमान, बदलते वर्षा पैटर्न और चरम मौसम घटनाओं के कारण पारंपरिक फूलों की खेती के तरीके प्रभावित हो रहे हैं। हालांकि, फूल उत्पादक इन बदलावों का सामना करने के लिए विभिन्न नवाचारी रणनीतियों, नए तकनीकी उपायों और पर्यावरणीय रूप से जिम्मेदार खेती के तरीकों को अपना रहे हैं। जलवायु-प्रतिरोधी किस्मों का चयन, प्रभावी पानी प्रबंधन प्रणालियों का उपयोग और नियंत्रित पर्यावरण खेती की मदद से फूल उत्पादक इन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं और उच्च गुणवत्ता वाले फूलों का उत्पादन जारी रखे हुए हैं।

जैसे-जैसे यह उद्योग विकसित होता रहेगा, यह महत्वपूर्ण होगा कि उत्पादक, वैज्ञानिक और पर्यावरणविद मिलकर और अधिक टिकाऊ और जलवायु-उपयुक्त खेती के तरीकों को विकसित करें। पुष्पवर्धन का भविष्य इस पर निर्भर करेगा कि उत्पादक नवाचार अपनाते हैं, नई तकनीकों को अपनाते हैं और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार तरीकों से अपनी खेती करते हैं, ताकि फूलों की किस्मों की रक्षा की जा सके और एक टिकाऊ भविष्य की ओर बढ़ा जा सके।

■■■

ISSN: 3049-2211

हाइड्रोपोनिक्सः टिकाऊ कृषि द्वारा वैश्विक खाद्य संकट का समाधान

सौरव चौरसिया, श्रद्धा यादव एवं मेघनाथ सिंह ध्रुर्वे

शोध छात्र, शस्य विज्ञानद्ध

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, 224229 (उ0प्र0)

प्रस्तावना

21वीं सदी में वैश्विक जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, और इसके साथ ही खाद्य उत्पादन की मांग भी अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, 2050 तक विश्व की जनसंख्या 9.7 अरब तक पहुंचने की संभावना है, जिससे कृषि क्षेत्र पर भारी दबाव पड़ेगा। दूसरी ओर, जलवायु परिवर्तन, जल संकट, और कृषि योग्य भूमि की कमी जैसी समस्याएं पारंपरिक खेती को बाधित कर रही हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए, वैज्ञानिक और कृषि विशेषज्ञ वैकल्पिक कृषि पद्धतियों की ओर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जिनमें हाइड्रोपोनिक्स सबसे प्रभावी और टिकाऊ तकनीक के रूप में उभर रही है।

हाइड्रोपोनिक्स एक लोकप्रिय बागवानी पद्धति या प्रणाली है जिसमे मिट्टी का उपयोग बिल्कुल नहीं किया जाता है। इसके स्थान पर पौधों की जड़ों को पीट मॉस, पेर्लाइट और रॉकवूल जैसे पदार्थों द्वारा स्थापित किया जाता है। बागवानी का यह एक ऐसा तरीका है जिसमे पौधों को येसे पानी के घोल में रखता है जिसमें पौधों के लिए जरूरी पोषक तत्व भरपूर होता है। पौधों को उगाने के लिए मिट्टी का उपयोग करने के बजाय, पौधों की जड़ें पोषक तत्वों से भरपूर घोल के सीधे संपर्क में आती हैं। पौधों को ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा तक भी उपलब्ध करवाई जाती है जो विकास को सुविधाजनक बनाने में मदद करता है।

हाइड्रोपोनिक्स और इसकी कार्यप्रणाली

हाइड्रोपोनिक्स दो ग्रीक शब्दों से बना है जल, कार्य), इसका शाब्दिक अर्थ "जल आधारित खेती" है। इस विधि में मिट्टी के स्थान पर पोषक तत्वों से समृद्ध जल का उपयोग किया जाता है, जिससे पौधे सीधे पोषण प्राप्त कर तेजी से विकसित होते हैं।

हाइड्रोपोनिक्स में पौधों की जड़ों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने के लिए एक विशेष जल प्रणाली का उपयोग किया जाता है। इस प्रणाली को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए निम्नलिखित प्रमुख तत्वों का ध्यान रखा जाता हैः

1. **पोषक तत्वों का घोलः** हाइड्रोपोनिक्स में पौधों को आवश्यक पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम, आदि) एक जल आधारित घोल में मिलाकर दिया जाता है। यह घोल पौधों की जड़ों द्वारा सीधे अवशोषित किया जाता है, जिससे उनकी वृद्धि तेज होती है।
2. **जल की आपूर्ति और पुनर्चक्रणः** हाइड्रोपोनिक्स में पानी को पुनः उपयोग किया जाता है, जिससे जल की बर्बादी नहीं होती। कुछ

सिस्टम में पानी लगातार बहता रहता है, जबकि कुछ में जल को समय-समय पर जड़ों तक पहुँचाया जाता है।

3. **ऑक्सीजन की उपलब्धता:** पौधों की जड़ों को उचित ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। इसके लिए सिस्टम में एयर पंप या ऑक्सीजन आपूर्ति तकनीक का उपयोग किया जाता है ताकि पौधों की जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल सके और वे स्वस्थ रह सकें।
4. **तापमान और प्रकाश का नियंत्रण:** हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली को नियंत्रित वातावरण में रखा जाता है, जहाँ प्रकाश, तापमान, और आर्द्रता का प्रबंधन किया जाता है। यह पौधों की वृद्धि को अनुकूलित करता है और पूरे वर्ष उत्पादन संभव बनाता है।

हाइड्रोपोनिक्स के प्रमुख प्रकार

पौधों को विकसित करने के लिए हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग करने का प्राथमिक लाभ यह है कि यह बहुत तेज विकास दर होती है। मिट्टी आधारित रोपण विधियों की तुलना में विकास दर 30 प्रतिशत तक तेज हो सकती है। हाइड्रोपोनिक सिस्टम कई प्रकार के होते हैं। प्रत्येक हाइड्रोपोनिक सिस्टम अलग तरीके से काम करते हैं, यदि आप हीड्रोपोनिक्स विधि से बागवानी करना चाहते है तो आपको प्रत्येक सिस्टम पूरी तरह से समझने की आवश्यकता होगी जो आपके लिए यह निर्धारित करना आसान बनाता है कि आपके लिए कौन सी प्रणाली सही है।

नीचे हाइड्रोपोनिक प्रणालियों के छह अलग-अलग प्रकार दिये गये हैं जिनका आप उपयोग कर सकते हैं:-

1. पोषक तत्व फिल्म तकनीक
2. ड्रिप प्रणाली
3. जल संस्कृति
4. बाती प्रणाली
5. ईबब और फ्लो
6. एरोपोनिक सिस्टम

1. पोषक तत्व फिल्म तकनीक

न्यूट्रिएंट फिल्म तकनीक हाइड्रोपोनिक्स की एक उन्नत विधि है, जिसमें पौधों को बिना मिट्टी के केवल पोषक तत्वों से भरपूर जल प्रवाह में उगाया जाता है। इस प्रणाली में पानी की एक पतली परत लगातार बहती रहती है, जिससे पौधों की जड़ों को आवश्यक पोषण मिलता है। यह तकनीक विशेष रूप से हरी पत्तेदार सब्जियों (लेट्यूस, पालक, धनिया, तुलसी आदि) और छोटे जड़ी-बूटियों के उत्पादन के लिए उपयोगी मानी जाती है।

कार्य प्रणाली

NFT में उपयोग होने वाले पानी में आवश्यक खनिज और पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि) मिलाए जाते हैं। यह जल एक बंद सर्किट में घूमता रहता है, जिससे अपशिष्ट नहीं होता और जल की खपत कम होती है। पौधों को प्लास्टिक या पीवीसी पाइप में छोटे-छोटे छिद्रों में रखा जाता है। इन पाइपों को हल्की ढलान (1-3%) पर सेट किया जाता है, जिससे पोषक तत्वों वाला जल गुरुत्वाकर्षण के कारण धीरे-धीरे प्रवाहित होता रहता है। पानी की यह पतली परत (फिल्म) पौधों की जड़ों को गीला रखती है, लेकिन पूरी तरह डुबोती नहीं, जिससे जड़ों को ऑक्सीजन भी मिलती रहती है। पोषक तत्वों वाला जल एक टैंक में संग्रहीत किया जाता है और एक पंप के माध्यम से पाइपों में प्रवाहित किया जाता है। यह जल पुनः टैंक में वापस लौटता है, जिससे जल की बचत होती है और पोषण का पुनरू उपयोग संभव होता है। पौधों की जड़ों तक पर्याप्त ऑक्सीजन पहुँचाने के लिए NFT सिस्टम में एक वॉटर पंप और एयर पंप का उपयोग किया जाता है। इससे पौधों की जड़ों को ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा मिलती रहती है, जिससे उनकी वृद्धि तेजी से होती है। पानी का तापमान 18-22°C और पीएच स्तर 5.5-6.5 के बीच बनाए रखा जाता है, जिससे

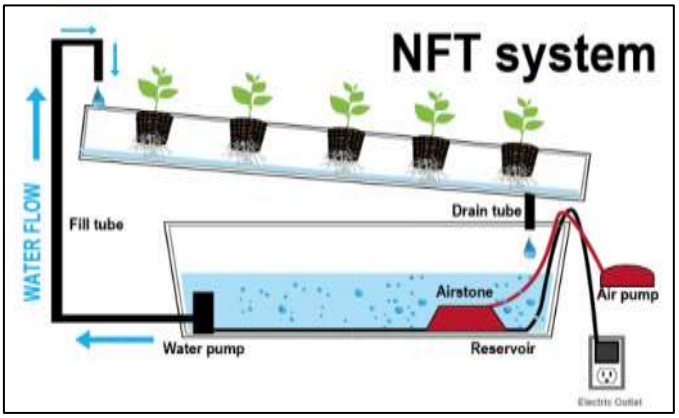

पौधों को पोषक तत्वों का सर्वोत्तम अवशोषण प्राप्त हो सके।

NFT प्रणाली में उगाई जाने वाली फसलें

NFT प्रणाली में हल्की और तेज बढ़ने वाली फसलें सबसे अच्छी तरह विकसित होती हैं, जैसेः

- हरी पत्तेदार सब्जियाँ - लेट्यूस, पालक, केल, सरसों पत्ता
- जड़ी-बूटियाँ - धनिया, पुदीना, तुलसी, अजवाइन
- छोटी फलियाँ और सब्जियाँ दृ स्ट्रॉबेरी, टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च

ISSN: 3049-2211

2. ड्रिप प्रणाली

हाइड्रोपोनिक्स में ड्रिप प्रणाली सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली तकनीकों में से एक है। इस प्रणाली में पौधों की जड़ों तक पोषक तत्वों से भरपूर जल को नियंत्रित मात्रा में बूंद-बूंद के रूप में पहुँचाया जाता है। यह प्रणाली जल और पोषक तत्वों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चित करती है, जिससे पौधों की वृद्धि तेज होती है और जल की बर्बादी कम होती है। ड्रिप प्रणाली का उपयोग पारंपरिक मिट्टी आधारित खेती में भी किया जाता है, लेकिन हाइड्रोपोनिक्स में यह अधिक कुशल होती है, क्योंकि इसमें मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती और पोषक तत्व सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचते हैं।

कार्यप्रणाली

एक टैंक में पानी और आवश्यक पोषक तत्व मिलाए जाते हैं। इस घोल को एक पंप के माध्यम से पाइप नेटवर्क में भेजा जाता है। पोषक तत्वों का पीएच स्तर (5.5-6.5) और इलेक्ट्रिकल कंडक्टिविटी को संतुलित रखा जाता है। पौधों की जड़ों तक पोषक तत्व पहुँचाने के लिए ड्रिपर का उपयोग किया जाता है, जो पानी की नियंत्रित मात्रा छोड़ते हैं। ड्रिपर की प्रवाह दर 1-4 लीटर प्रति घंटा के बीच हो सकती है। पोषक तत्वों का घोल मुख्य पाइप से जुड़ी पतली नलियों के माध्यम से पौधों तक पहुँचता है। पॉलीथीन ट्यूबिंग का उपयोग किया जाता है, जो हल्की और टिकाऊ होती है। एक पानी का पंप पोषक तत्वों के घोल को टैंक से पाइप नेटवर्क में भेजता है। टाइमर की मदद से यह तय किया जाता है कि पौधों को कितनी देर और कितनी बार जल दिया जाए। बचा हुआ पोषक तत्व घोल वापस टैंक में लौट जाता है और पुनः उपयोग किया जाता है। पोषक तत्व घोल को एक बार उपयोग किया जाता है और अतिरिक्त जल को बहा दिया जाता है।

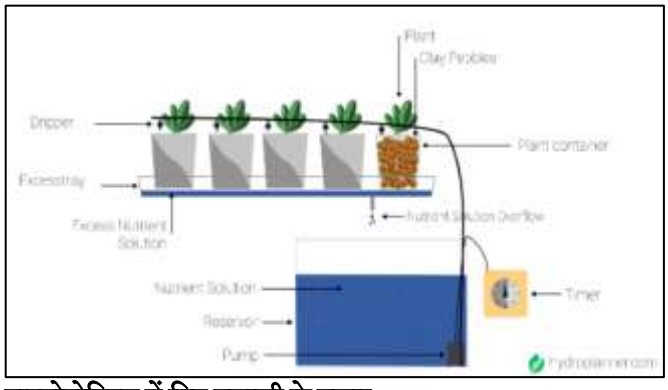

हाइड्रोपोनिक्स में ड्रिप प्रणाली के प्रकार

(क). रिक्यूरकुलेटिंग ड्रिप सिस्टम

इस प्रणाली में बचा हुआ पोषक घोल वापस टैंक में चला जाता है और फिर से उपयोग किया जाता है। यह जल और पोषक तत्वों की बचत करता है, लेकिन इसमें पीएच और ईसी का संतुलन बनाए रखना जरूरी होता है। वाणिज्यिक हाइड्रोपोनिक फार्मिंग में यह प्रणाली अधिक लोकप्रिय है।

(ख). नॉन-रिक्यूरकुलेटिंग ड्रिप सिस्टम

इस प्रणाली में पोषक तत्वों का घोल एक बार पौधों को दिया जाता है और अतिरिक्त घोल को निकाल दिया जाता है। यह प्रणाली पीएच और पोषक संतुलन को बनाए रखने में आसान होती है, लेकिन इसमें जल की अधिक खपत होती है।

हाइड्रोपोनिक्स में ड्रिप प्रणाली में उगाई जाने वाली फसलें

टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च, स्ट्रॉबेरी, बैंगन, सभी प्रकार की जड़ी-बूटियाँ

3. जल संस्कृति

जल संस्कृति (Water Culture) हाइड्रोपोनिक्स की सबसे सरल और प्रारंभिक विधियों में से एक है। इस प्रणाली में पौधे बिना मिट्टी के सीधे पोषक तत्वों से भरपूर जल में उगाए जाते हैं। पौधों की जड़ें निरंतर पानी में डूबी रहती हैं, जिससे वे आवश्यक पोषक तत्व और ऑक्सीजन सीधे अवशोषित कर पाती हैं। इस प्रणाली को डीप वाटर कल्चर भी कहा जाता है और यह घर के बागवानी, छोटे स्तर के हाइड्रोपोनिक्स सिस्टम और वाणिज्यिक फार्मिंग के लिए एक बेहतरीन विकल्प है। इस प्रणाली में पौधों को एक फ्लोटिंग प्लेटफॉर्म या नेट पॉट में रखा जाता है, जो पोषक तत्वों से भरे जल टैंक के ऊपर तैरता रहता है। पौधों की जड़ें सीधे पोषक तत्वों के घोल में डूबी रहती हैं, जिससे उन्हें निरंतर जल, पोषक तत्व और ऑक्सीजन मिलता है।

कार्यप्रणाली

यह प्रणाली एक टैंक या कंटेनर में पोषक तत्वों से भरपूर जल को स्टोर करती है। टैंक का आकार फसल और उपलब्ध स्थान के अनुसार तय किया जाता है। पौधों को नेट पॉट (छेद वाले छोटे गमले) में लगाया जाता है। इन्हें एक फ्लोटिंग प्लेटफॉर्म (स्टायरोफोम शीट या अन्य हल्के पदार्थ) पर रखा जाता है, जिससे पौधे स्थिर रहते हैं और उनकी जड़ें नीचे पोषक घोल में डूबी रहती हैं। पानी में आवश्यक पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, सूक्ष्म पोषक तत्व आदि) को सही अनुपात में मिलाया जाता है। पानी का पीएच (5.5-6.5) और इलेक्ट्रिकल कंडक्टिविटी (म्ब्) संतुलित रखी जाती है। चूँकि पौधों की जड़ें पूरी तरह पानी में डूबी रहती हैं, ऑक्सीजन की आपूर्ति के लिए एयर पंप और एयर स्टोन का उपयोग किया जाता है। ऑक्सीजन की कमी होने पर जड़ें सड़ सकती हैं और पौधा मर सकता है।

ISSN: 3049-2211

जल संस्कृति प्रणाली के प्रकार

(क). स्टैंडर्ड डीप वाटर कल्चर

इसमें एक जल टैंक, पोषक तत्व घोल, एयर पंप और नेट पॉट्स का उपयोग किया जाता है। पौधे स्थायी रूप से पोषक जल में रहते हैं और ऑक्सीजन के लिए एयर पंप का उपयोग किया जाता है। यह शौकिया और छोटे स्तर की खेती के लिए उपयुक्त है।

(ख). रिक्यूरकुलेटिंग डीप वाटर कल्चर

यह बड़े पैमाने पर उपयोग की जाने वाली उन्नत प्रणाली है। इसमें एक से अधिक जल टैंकों को पाइप के माध्यम से जोड़ा जाता है, जिससे पोषक तत्वों का घोल संचालित होता रहता है। यह वाणिज्यिक हाइड्रोपोनिक्स फार्मिंग के लिए उपयोगी होती है।

(ग). क्रैकी विधि

यह सबसे सरल जल संस्कृति प्रणाली है, जिसमें एयर पंप की जरूरत नहीं होती। पौधों की जड़ें धीरे-धीरे नीचे बढ़ती हैं और ऑक्सीजन को घोल में मौजूद खाली स्थानों से प्राप्त करती हैं। यह छोटे स्तर पर घर में हाइड्रोपोनिक्स उगाने के लिए एक शानदार तरीका है।

जल संस्कृति प्रणाली में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें

लेट्यूस, पालक, तुलसी, पुदीना, मूली - कुछ विशेष विधियों में, गोभी और ब्रोकली- छोटे पौधों के रूप में

4.बाती प्रणाली

बाती प्रणाली हाइड्रोपोनिक्स की एक सर्वाधिक सरल और प्रभावी प्रणाली है, जो जल-संरक्षण और कम देखभाल के लिए जानी जाती है। इस प्रणाली में बाती का उपयोग पानी और पोषक तत्वों को पौधों की जड़ों तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। इसमें किसी भी प्रकार के पंप या जल प्रवाह की आवश्यकता नहीं होती, जिससे यह प्रणाली कम खर्चीली और आसानी से लागू की जा सकती है।

बाती प्रणाली एक मिट्टी रहित कृषि तकनीक है जिसमें बाती का इस्तेमाल किया जाता है ताकि पोषक तत्वों से भरपूर पानी पौधों की जड़ों तक धीरे-धीरे पहुँचे। बत्ती नैतिक या सिंथेटिक सामग्री से बनी होती है, जैसे कि सूती धागा, नायलॉन, या अन्य अवशोषक सामग्री। यह सिस्टम प्राकृतिक प्रक्रिया के समान कार्य करता है, जिसमें पानी और पोषक तत्व गुरुत्वाकर्षण और कैपिलरी क्रिया द्वारा पौधों तक पहुंचते हैं।

कार्यप्रणाली

पोषक तत्वों से भरपूर जल एक टैंक में रखा जाता है। टैंक में पौधों की जड़ों तक पहुँचने के लिए पर्याप्त पानी होता है। पानी का पीएच और इलेक्ट्रिकल कंडक्टिविटी को नियंत्रित किया जाता है। बत्ती एक नैतिक या सिंथेटिक सामग्री से बनी होती है जो जल और पोषक तत्वों को जड़ों तक पहुँचाती है। बत्ती के एक छोर को जल टैंक में डुबोया जाता है, जबकि दूसरा छोर पौधों की जड़ों से जुड़ा होता है। कापिलरी क्रिया द्वारा पानी बत्ती से पौधों की जड़ों तक पहुँचता है।

बाती प्रणाली के प्रकार

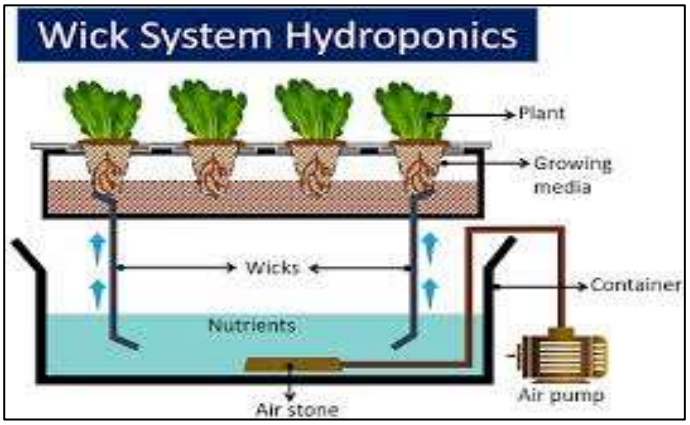

(क). साधारण बाती प्रणाली

इसमें जल टैंक, बत्ती, और पौधों के लिए प्लेटफॉर्म शामिल होते हैं। यह प्रणाली छोटे पैमाने पर घर के बागवानी या शौकिया हाइड्रोपोनिक्स के लिए उपयुक्त है।

(ख). रिवर्स ड्यूल फ्लो सिस्टम

इस प्रणाली में, बत्ती के माध्यम से जल और पोषक तत्वों को दोनों दिशाओं में प्रवाहित किया जाता है। अंतराल पर पानी का प्रवाह नियंत्रित किया जाता है, जिससे पौधों को अधिक पोषक तत्व मिलते हैं।

बाती प्रणाली में उगाई जाने वाली फसलें

लेट्यूस, पालक, तुलसी, पुदीना, बैसिल, शलरी, स्ट्रॉबेरी, काले

5.ईबब और फ्लो

ईबब और फ्लो प्रणाली, जिसे फ्लड और ड्रेन सिस्टम भी कहा जाता है, हाइड्रोपोनिक्स की एक प्रमुख और उन्नत तकनीक है। इस प्रणाली में पोषक तत्वों से भरपूर जल का नियमित रूप से पौधों की जड़ों तक पहुंचाना और फिर उसे वापस निकालना शामिल होता है। यह प्रणाली स्वचालित जल संचलन के सिद्धांत पर काम करती है और इसे कम रख-रखाव और उच्च फसल उत्पादन के लिए पसंद किया जाता है।

कार्यप्रणाली

ईबब और फ्लो प्रणाली में पानी का जल प्रवाह और निकासी नियमित अंतराल पर होती है। इस प्रक्रिया में दो मुख्य चरण होते हैं:

(क). फ्लड चरण

सबसे पहले, पोषक तत्वों से भरे जल को पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जाता है। पानी एक फ्लड टैंक (जंदा) से पौधों के गमले या

ISSN: 3049-2211

कंटेनरों में प्रवाहित होता है। इस चरण में पौधों की जड़ें पानी में डूबी रहती हैं, जिससे उन्हें पोषक तत्व मिलते हैं और वे तेजी से बढ़ते हैं।

(ख). ड्रेन चरण

कुछ समय बाद, पानी को वापस टैंक में खींच लिया जाता है। पानी की निकासी गुरुत्वाकर्षण या पंप के माध्यम से होती है, जिससे जड़ों को ऑक्सीजन प्राप्त होती है और पानी का स्तर फिर से सामान्य हो जाता है। यह प्रक्रिया नियमित रूप से चलती रहती है, जिससे पौधों की जड़ों को पोषक तत्व और ऑक्सीजन दोनों मिलते हैं।

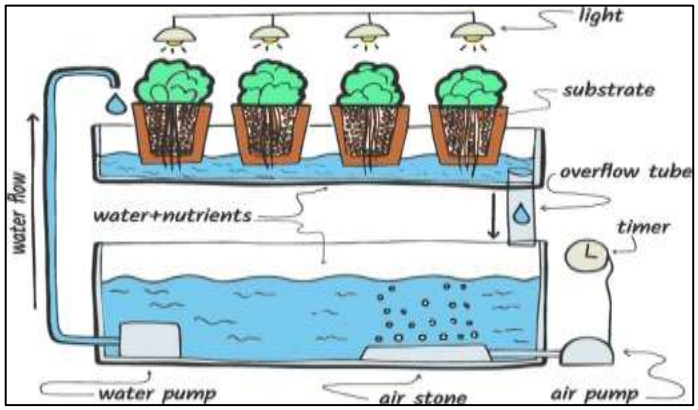

6.एरोपोनिक सिस्टम

एरोपोनिक सिस्टम हाइड्रोपोनिक्स की एक उन्नत और अत्यधिक प्रभावी तकनीक है जिसमें पौधों की जड़ों को वातावरण में निलंबित रखा जाता है और पोषक तत्वों से भरे पानी के माइक्रो ड्रॉपलेट्स द्वारा इन जड़ों को नम रखा जाता है। इस प्रणाली में पानी का कोई स्थिर प्रवाह नहीं होता और न ही यह मिट्टी की आवश्यकता होती है। पौधे हवा में लटकते हैं, और उनकी जड़ों को पोषक तत्वों से समृद्ध स्प्रे के माध्यम से पोषित किया जाता है।

कार्यप्रणाली

एरोपोनिक प्रणाली में पौधों की जड़ों को एक विशेष प्रकार की रैक या संरचना में लटकाया जाता है। इस प्रणाली में मुख्यतः तीन चरण होते हैं:

1. **पोषक तत्वों का मिश्रण-** एरोपोनिक सिस्टम में पानी और पोषक तत्व का मिश्रण तैयार किया जाता है। इस मिश्रण में पौधों के लिए आवश्यक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, और मैग्नीशियम होते हैं, जो पौधों की वृद्धि में मदद करते हैं।
2. **स्प्रे प्रणाली-** इस मिश्रण को एक स्प्रे सिस्टम के माध्यम से पौधों की जड़ों पर माइक्रो ड्रॉपलेट्स के रूप में छिड़का जाता है। स्प्रे के दौरान, पोषक तत्व जड़ों तक पहुँचते हैं, और यह उन्हें अत्यधिक ऑक्सीजन की आपूर्ति भी करता है।
3. **जड़ों का निलंबन-** पौधों की जड़ें एक निर्मित रैक या ट्रे में लटकाई जाती हैं। इन जड़ों को वातावरण में निलंबित रखा जाता है, जिससे वे हवा में अधिक ऑक्सीजन प्राप्त करती हैं।

एरोपोनिक सिस्टम में उगाई जाने वाली फसलें

लेट्यूस, बैसिल, टमाटर, ककड़ी. चिली, प्याज, स्ट्रॉबेरी, काले

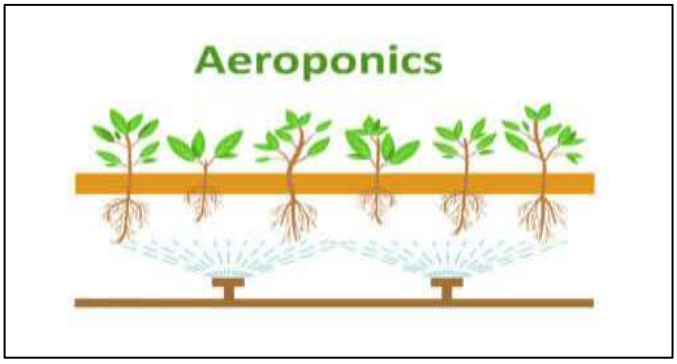

हाइड्रोपोनिक्स के लाभ

- हाइड्रोपोनिक्स पारंपरिक खेती की तुलना में 90%तक कम पानी का उपयोग करता है क्योंकि इसमें जल पुनः उपयोग किया जा सकता है।
- शहरी क्षेत्रों में छतों, वर्टिकल फार्मिंग और छोटे स्थानों में भी हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग किया जा सकता है, जिससे सीमित भूमि पर भी अधिक उत्पादन संभव है।
- पौधों को आवश्यक पोषक तत्व सीधे मिलने के कारण उनकी वृद्धि दर अधिक होती है और उत्पादन क्षमता दोगुनी या तिगुनी हो सकती है।
- इस प्रणाली को नियंत्रित वातावरण में अपनाया जा सकता है, जिससे तापमान, नमी और अन्य जलवायु कारकों का असर कम होता है।
- मिट्टी न होने के कारण हानिकारक कीटों और बीमारियों की संभावना कम होती है, जिससे कीटनाशकों की आवश्यकता कम पड़ती है।

वैश्विक खाद्य संकट के समाधान में हाइड्रोपोनिक्स की भूमिका

- दुनिया भर में शहरीकरण तेजी से बढ़ रहा है, जिससे कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। हाइड्रोपोनिक्स शहरी क्षेत्रों में भी खाद्य उत्पादन को संभव बनाता है, जिससे स्थानीय स्तर पर ताजा और पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो सकता है।
- खासकर जल-संकट से जूझ रहे क्षेत्रों में हाइड्रोपोनिक्स जल के अत्यधिक उपयोग को कम करके टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देता है।

- हाइड्रोपोनिक्स से उगाई गई फसलें पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं और नियंत्रित वातावरण में उगाने के कारण उनकी गुणवत्ता भी बेहतर होती है।
- इस तकनीक से खेती को जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों से बचाया जा सकता है, जिससे खाद्य उत्पादन स्थिर बना रहता है।

चुनौतियाँ और समाधान

- हाइड्रोपोनिक्स सेटअप की लागत पारंपरिक खेती से अधिक होती है, लेकिन इसे दीर्घकालिक लाभ और उच्च उत्पादकता के माध्यम से संतुलित किया जा सकता है।
- इस प्रणाली को संचालित करने के लिए तकनीकी जानकारी जरूरी होती है। किसानों को प्रशिक्षण देकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।
- कई हाइड्रोपोनिक्स सिस्टम बिजली पर निर्भर होते हैं। इस चुनौती का समाधान सौर ऊर्जा और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के उपयोग से किया जा सकता है।

निष्कर्ष

हाइड्रोपोनिक्स केवल एक आधुनिक खेती की तकनीक नहीं है, बल्कि यह वैश्विक खाद्य संकट के समाधान का एक महत्वपूर्ण साधन है। जल, भूमि और संसाधनों की कमी के बावजूद, यह टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है। यदि इसे सही तरीके से अपनाया जाए और सरकारें व वैज्ञानिक संस्थान इस पर ध्यान दें, तो हाइड्रोपोनिक्स भविष्य में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

ISSN: 3049-2211

अरहर फसल में कीट प्रबंधन

गिरिजेश कुमार जायसवाल[1], इं अशोक कुमार पांडे[2] एव डॉ जय प्रकाश[3]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (पादप रोग विज्ञान), [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि अभियांत्रिकी), [3]विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार)

कृषि विज्ञान केंद्र, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

आचार्य नरेन्द्र देव कृशि एवं प्रौद्यौगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

दलहनी फसलों में अरहर की मांग अधिक होती है, जिससे इसकी खेती किसानों के लिए मुनाफे का सौदा है। हमारे देश में दलहन फसलों की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है, और अरहर का इनमें एक विशेष स्थान है। भारत का विश्व में अरहर के क्षेत्रफल व उत्पादन में प्रथम स्थान हैं। खरीफ मौसम में की जाने वाली अरहर की खेती से किसान अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं। इसे तुअर दाल के नाम से भी जाना जाता है। अरहर में प्रोटीन, खनिज तत्व, कार्बोहाइड्रेट, आयरन, और कैल्शियम पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। अरहर की फसल को कीटों से बहुत अधिक हानि होती है। कभी कभी इनके प्रकोप से उत्पादन मे 54-65 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। अतः इनकी पहचान और रोकथाम करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। और फसल को हानि से बचाने से बचाया जा सकता है।

1. फली भेदक (हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा)

फली भेदक (हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा) अरहर का प्रमुख हानिकारक कीट है। यह कीट प्रतिवर्ष लगभग 20-30 प्रतिशत तक अरहर की फसल को हानि पहुँचाता है। अत्यधिक प्रजनन व पलायन क्षमता के साथ ही साथ बहुभक्षी होना इस के प्रमुख हानिकारक कीट होने का मूल कारण है। अनुकूल वातावरण मिलने पर इसका प्रकोप बढ़ जाता है जिससे पूरी फसल तक नष्ट हो सकती है। शरद ऋतु के बाद फरवरी और मार्च में तापमान बढ़ने के साथ-साथ चना फली भेदक का प्रकोप बढ़ जाता है। वयस्क सूंड़ी अरहर की फलियों में छेद करके दानों को नुकसान पहुँचाती है। प्रायः किसान इस कीट के प्रकोप को उस समय समझ पाते हैं जब सूंड़ी बड़ी होकर अरहर की फसल को 5-7 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचा चुकी होती है। इस अवस्था में चना फली भेदक को नियंत्रण कर पाना काफी कठिन और मुश्किल होता है जिससे किसानों को आर्थिक क्षति होती है।

फली भेदक का जीवन चक्र 30-37 दिन का और इसमें चार अवस्थायें होती हैं-अण्डा, सूंड़ी, कोषक एवं पतंगा। मादा पतंगा अपने जीवन काल में 500-1700 अंडे देती हैं। इन अंडों से 5-7 दिनों में सूड़ी निकल आती हैं। चना फली भेदक की सूड़ी 12-14 दिनों में 5-6 बार अपना केचुल बदलते हुए बड़ी होती हैं। इसकी सूंड़ी ही फसल को नुकसान पहुचाती है और धीरे - धीरे कोषक में परिवर्तित हो जाती है। यह कोषक सुप्त अवस्था में जमीन के अंदर पड़ा रहता हैं और 8-10 दिनों बाद अनुकूल वातावरण मिलने पर कोषक से पतंगा निकलता है।

प्रबन्धन

- ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करनी चाहिए।
- अरहर की फसल में ज्वार की अन्तरू फसली का चयन करना चाहिए।
- खेत में फेरोमोन ट्रैप (5 प्रति हेक्टेयर)का प्रयोग करना चाहिए।
- 1.0 से 1.5 किग्रा. प्रति हे. बेसिलस थूरिंजिएंसिस कुर्सटाकी 1000 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करने पर तीसरे इन्स्टार सूडी का प्रबन्धन हो सकता है।
- ईमामेक्टीन बेन्जोएट 5 एस.जी. (0.3 ग्रा. या/ली.) की दर से या इन्डेक्सोकार्ब 15.8 ई.सी. (0.5 मि.ली.ली.) या स्पाईनोसाड 45 प्रतिशत एस.सी. (0.2 मि.ली./ली..) का छिड़काव करें।

2. **फली मक्खी (मेलनोगरोमैजा ओबटुयसा)**

अरहर की फली मक्खी उत्तर भारत में देर से पकने वाली अरहर की फसल का द्वितीय महत्वपूर्ण कीट हैं। यह ऐसा हानिकारक कीट है जिसकी सभी अवयस्क अवस्थायें जैसे अण्डा, सूंडी और कोषक अरहर की फली के अन्दर होती है। इस कारण फसल की हानि का सही अनुमान फसल की कटाई एवं पिटाई होने पर ही ज्ञात होता हैं इसलिये इस हानिकारक कीट को प्रबंधन कर पाना अपेक्षाकृत कठिन एवं दुसाध्य हैं। प्रौढ़ मक्खी देखने में छोटी सी काली चमकदार घरेलू मक्खी की तरह होती हैं, अरहर की नयी अवयस्क फलियों में जब दाना सरसों से थोड़ा बड़ा बन जाता है तो मादा मक्खी छेद कर उसमें अण्डे दे देती है। अरहर की फली मक्खी से हानि उसकी अण्डें से बनी सूंडी द्वारा अविकसित व मुलायम दानों को खाने से होती है। दूसरी और तृतीय अवस्था की सूंडी अरहर के दानों में अन्दर गहरायी तक छेद करती है और स्टार्च तथा भ्रूण को खाकर मल अन्दर भर देती है। पूरी तरह परिपक्व सूड़ी दाने से बाहर निकल कर अरहर की फली के आवरण में छोटा गोल छेद इस तरह बनाती है कि ऊपर सिर्फ छिल्ली लगी रहती सूड़ी धीरे-धीरे फली के अन्दर ही कोषक में परिवर्तित हो जाती है। फली मक्खी के कोषक से वयस्क मक्खी इस छिल्ली को फाडकर बाहर निकलती है और फली में छोटा सा गोल छेद बन जाता है। जब क्षतिग्रस्त अरहर की फलियों को खोलते हैं तो फली मक्खी की अपरिपक्व अवस्थायें या उनकी केंचुल फली की दीवार या दानों से लगी मिलती है। फली मक्खी के ग्रसित दाने मे गौण फफूँदी संक्रमण होता है। जिससे दाने खाने व बुवाई के लिए प्रयोग मे नही लाए जा सकते है।

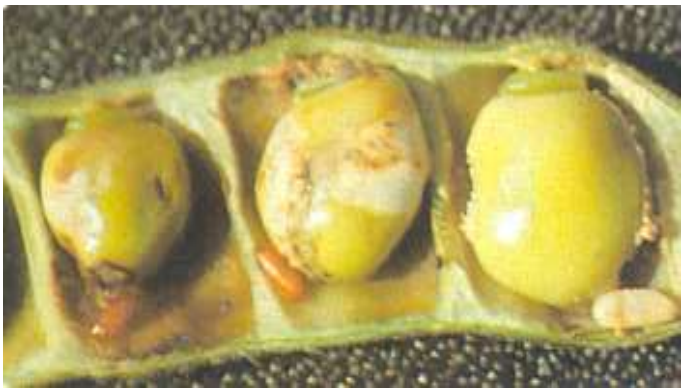

प्रबन्धन

- नीम आधारित दवाईयाँ जैसे लेम्बडा साइहेलोथ्रिन 5 ई.सी. (0.8 मि.ली./ली.. पानी में मिलाकर या लूफेनुरोन 5.4 ई.सी. (0.6 मि.ली./लीटर पानी में) का छिड़काव करें।
- डेल्टामेथ्रिन 2.8: ईण्सीण् / 1 मि.ली. या इंडोक्साकार्ब 15.80: ईण्सीण् / 0.6 मिली/लीटर का छिड़काव करें।
- इमेडाक्लोपिड 17.5 एस.एल. या (2.0 मि.ली.) + गुड़ (10 ग्राम) प्रति लीटर का प्रयोग करे।
- थाइमेथेक्सन 25 डब्ल्यू.जी. या (3.0 मि.ली.)+गुड़ (10 ग्राम) प्रति लीटर का प्रयोग करे।

3.ब्लिस्टर बीटल (माइलेब्रिस पूस्टूलेटा)

ब्लिस्टर बीटल कीट प्रौढ़ पुष्पों, को खाकर फलियों बनने की प्रक्रिया को रोक देता है। इसके वयस्क नारंगी व काले रंग के करीब 2.5 सेमी. लंबे होते हैं। एक मादा 60 से 70 तक अण्डे जमीन पर देती है।

ISSN: 3049-2211

परिणामस्वरुप ऐसे फूलों में फली नही बन पाती तथा बहुत अधिक हानि होती है इससे होने वाली आर्थिक क्षति का अनुमान लगा पाना बहुत मुश्किल होता है। एक व्यस्क बीटल 20- 30 फूलों को एक दिन में नुकसान पहुँचा सकती है। हाथ से छूने पर यह कीट पीले रंग का अम्लीय पीला द्रव छोडते है जिससे शरीर पर फफोलें पड़ जाते हैं। इसी कारण इसको फफोला बीटल कहते है।

प्रबन्धन

- शाम को यह कीट झुँड में खेत के किनारे झाड़ीयों व पेड़ों पर इकट्ठा हो जाते हैं। तभी वयस्क कीट को दस्ताने पहनकर पकड़ कर मिट्टी के तेल में डाल कर मार देना चाहिए।
- क्विनालफॉस 25: ई.सी / 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

4.चित्तीदार फली भेदक (मारुका विटराटा)

यह फली छेदक कीट अगेती अरहर का प्रमुख हानिकारक कीट है। फसल में पुष्पीकरण के दौरान अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में इस कीट का प्रकेप अधिक होता है। चित्तीदार फली भेदक की सूँड़ी अरहर की कलियों, फूलों व फलियों एवं पत्तियों को मिलकर गुच्छा सा बना लेती हैं और अन्दर ही अन्दर पौधे के भागों को खाती रहती हैं। ये कीट अरहर की जल्दी पकने वाली प्रजातियों (130-140 अवधि), चौड़ी पत्तियां और समूहबद्व पुष्क्रम किस्मों के लिये अतिसंवेदनशील होते हैं। ग्रसित फूल रंगहीन भूरे होकर गिर जाते हैं। इस कीट का प्रकोप देश के विभिन्न कृषि प्रथाओं वाले सभी अरहर उत्पादक क्षेत्रों में देखा गया है। इस कीट का प्रकोप क्षेत्र लगातार बढ़ता जा रहा है। इस कीट के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित रसायनों का प्रयोग करना चाहिए।

प्रबन्धन

- अरहर की बुवाई जल्दी यानी 15 मई से 15 जून तक कर लेनी चाहिए।
- कली बनते समय कोराजेन 18.5 एस.सी. (1मिली/ली..) की दर से छिड़काव कर दें तो इस कीट का नियंत्रण हो जाता है।
- मेथोमाइल 40% ,एस.पी./ 1125 मि.ली./ हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए।
- इण्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. कीटनाशी (0.4 मि.ली. प्रति लीटर) या स्पाइनोसाड 45 एस.सी. कीटनाशी (0.2 मि.ली. प्रति लीटर पानी) में घोलकर प्रभावित फसल पर छिड़काव करें।

5.पत्ती एवं प्ररोह मोड़क कीट

अरहर की फसल में लगने वाले एक प्रमुख कीट को पत्ती लपेटक या लीफ फोल्डर कहते हैं। यह कीट जुलाई-अगस्त में सर्वाधिक सक्रिय रहता है। पौधे की निचली सतह की पत्ती पर इसका प्रभाव अधिक होता है। इसकी सूड़ी उपरी ३-४ पत्तियों को मोड़कर एक लूप जैसा बना लेती है और उसी को खाती रहती है। इस प्रकार क्षतिग्रस्त पौधे की वृद्धि रूक जाती है पत्तियों का हरा भाग नष्ट हो जाता है, जिससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है और फसल की पैदावार घट जाती है।

प्रबन्धन

- इमामेक्टिन बेंजोएट 5: एस.जी. का 10 ग्राम कीटनाशक दवा प्रति 15 लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
- डाइमेथोएट 30% ई.सी.का 25 मिली कीटनाशक दवा प्रति 15 लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

ISSN: 3049-2211

नीम आधारित बायोपेस्टीसाईडः कारगर और पर्यावरण-अनुकूल

डॉ. एस.जी. घुगल[1] , डॉ. साक्षी सिंह[2]

[1]कीटशास्त्र विभाग, [2] सहायक प्राध्यापक, पौधरोग विज्ञान विभाग

जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पवारखेड़ा, नर्मदापुरम, मध्य प्रदेश

नीम आधारित बायोपेस्टीसाईड्स कीट नियंत्रण का एक प्रभावी, टिकाऊ और पर्यावरण-संवेदनशील विकल्प प्रस्तुत करते हैं। इनका उपयोग फसलों को सुरक्षित रखने के साथ-साथ मित्र जीवों, मृदा जैविकी और मानव स्वास्थ्य को भी संरक्षित करता है। अजाडिरैक्टिन जैसे जैव-सक्रिय यौगिक कीटों के जीवनचक्र को बाधित करते हैं, जिससे कीट जनसंख्या पर नियंत्रण स्थापित होता है। भारत जैसे देश में, जहाँ जैविक खेती और कम इनपुट लागत वाली तकनीकों की आवश्यकता अधिक है, नीम आधारित उत्पादों का उपयोग अत्यंत उपयोगी और समयानुकूल है।

प्रस्तावना

भारत में पारंपरिक कृषि पद्धतियों में नीम का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। नीम को प्राकृतिक कीटनाशी के रूप में जाना जाता है, जिसका उपयोग प्राचीन काल से बीज संरक्षण, कीट नियंत्रण और औषधीय कार्यों में होता रहा है। वर्तमान समय में जब रासायनिक कीटनाशकों के दुष्परिणामों, जैसे कीटों में प्रतिरोध, मित्र कीटों का नाश, मृदा और जल प्रदूषण, और मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभावकृने कृषि को चुनौतीपूर्ण बना दिया है, तब नीम आधारित बायोपेस्टीसाइड एक सुरक्षित, कारगर और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प के रूप में उभरे हैं।

नीम आधारित बायोपेस्टीसाइड क्या हैं?

नीम के बीज, पत्तियाँ, तना और फल से प्राप्त अर्कों में कई जैव-सक्रिय यौगिक होते हैं, जिनमें प्रमुख है अजाडिरैक्टिन। यह यौगिक कीटों की वृद्धि, भोजन, प्रजनन और मोल्टिंग की प्रक्रिया को बाधित करता है। नीम आधारित बायोपेस्टीसाईड्स रासायनिक कीटनाशकों के विपरीत कीटों को सीधे मारते नहीं, बल्कि उनकी शारीरिक क्रियाओं को बिगाड़कर उनकी जनसंख्या को नियंत्रित करते हैं, जिससे पारिस्थितिक संतुलन भी बना रहता है।

नीम आधारित बायोपेस्टीसाइड के प्रमुख घटक

यौगिक (Compound)	प्रभाव (Effect)
Azadirachtin	कीटों के हार्मोन असंतुलन और मोल्टिंग (molting) को बाधित करता है
Nimbin	कीटों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करता है
Salannin	कीटों की खाने की क्रिया (feeding) को रोकता है
Meliantriol	कीटों की प्रजनन क्षमता को घटाता है
Neem Oil	संपर्क में आने वाले कीटों को रोकता है और अंडों को नष्ट करता है

ISSN: 3049-2211

नीम आधारित बायोपेस्टीसाईड के प्रमुख लाभ

बहुआयामी क्रिया

- अंडा, लार्वा और वयस्क तीनों अवस्थाओं पर प्रभाव
- मोल्टिंग और मेटामॉर्फोसिस में बाधा

मित्र कीटों पर न्यूनतम प्रभाव

- *Chrysoperla, Trichogramma,* मधुमक्खियाँ आदि पर कोई विषैला प्रभाव नहीं

कीटों में प्रतिरोध नहीं बनता

- धीरे-धीरे कार्य करने वाली यह विधि प्रतिरोध के विकास को रोकती है

अवशेष रहित कृषि

- नीम के यौगिक जल्द टूट जाते हैं, फलध्अनाज में अवशेष नहीं रहता

जैविक खेती के लिए उपयुक्त

- भारत की च्ळै और छच्च्व् जैविक प्रमाणन प्रणालियों में स्वीकृत

मृदा एवं जल के लिए सुरक्षित

- मृदा के सूक्ष्मजीवों को नुकसान नहीं पहुँचाता

प्रयोग विधियाँ

उपयोग विधि	मात्रा / सांद्रण	उद्देश्य
नीम तेल 1500 पीपीएम	5 मि.ली. प्रति लीटर पानी	चूसक कीटों जैसे माहू, थ्रिप्स, सफेद मक्खी पर नियंत्रण
अजाडिरैक्टिन 300 पीपीएम	2–3 मि.ली. प्रति लीटर	व्यापक कीट नियंत्रण हेतु स्प्रे
नीम खली	250–500 किग्रा प्रति हे.	मृदा जनित कीटों और रोगों के लिए
बीज उपचार	5% नीम तेल से भिगोना	अंकुरण से पहले कीट और रोग नियंत्रण हेतु

प्रमुख कीट जिन पर नीम आधारित उत्पाद प्रभावी हैं

- माहू
- थ्रिप्स
- सफेद मक्खी
- फल मक्खी
- एफिड्स, जैसिड्स, माईट्स
- कटवर्म, कैटरपिलर
- स्टेम बोरर और लीफ फोल्डर

नीम आधारित उत्पादों के कुछ व्यावसायिक नाम

उत्पाद का नाम	निर्माता कंपनी
Neemark	T Stanes
Achook	Godrej Agrovet
Nimbecidine	T Stanes
Rakshak	Ajay Biotech
Econeem	Pest Control India

प्रयोग में सावधानियाँ

- सूर्यास्त से पहले या सुबह के समय स्प्रे करें
- वर्षा या अधिक धूप से बचाएँ
- जैविक उत्पादों को रासायनिक कीटनाशकों से न मिलाएँ
- उचित सांद्रता का पालन करें
- शेल्फ-लाइफ समाप्त न होने दें
- नीम आधारित बायोपेस्टीसाइड से जुड़े अनुसंधान और सरकारी समर्थन
- ICAR-NBAIR, IARI, TNAU जैसे संस्थानों द्वारा प्रमाणित
- राष्ट्रीय जैविक खेती मिशन द्वारा प्रोत्साहित
- राज्य कृषि विभाग द्वारा अनुदान पर उपलब्ध
- जैविक उत्पादों की प्रमाणन प्रणालियों में स्वीकृत

निष्कर्ष

नीम आधारित बायोपेस्टीसाइड्स फसल सुरक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी, प्राकृतिक और पर्यावरण-अनुकूल समाधान के रूप में उभर रहे हैं। ये उत्पाद रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभावों से बचाते हुए दीर्घकालिक कीट नियंत्रण प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में जब जैविक खेती, टिकाऊ कृषि और निर्यात योग्य अवशेष रहित फसलों की मांग तेजी से बढ़ रही है, नीम आधारित जैव कीटनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोग किसानों के लिए लाभदायक और राष्ट्र के लिए सामरिक रूप से आवश्यक है। कृषि वैज्ञानिकों, नीति-निर्माताओं और किसानों को मिलकर इसके प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए।

ISSN: 3049-2211

रेगिस्तान का जहाज ऊंट एव उसका संरक्षण

संजय[1], डॉ. कुलदिप प्रकाश शिंदे[2]

[1]स्नातकोत्तर छात्र, [2]सहायक प्राध्यापक (एल.पी.एम.)

पशुधन उत्पादन और प्रबंधन विभाग

स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

ऊंट एक अद्वितीय और महत्वपूर्ण जानवर है जो रेगिस्तानी इलाकों में पाया जाता है। यह अपनी सहनशक्ति और अनुकूलनशीलता के लिए जाना जाता है इसलिए ऊंट को रेगिस्तान का जहाज भी कहते है। देश में ऊंट पालन का बहुत महत्व है खासकर राजस्थान जैसे शुष्क प्रदेश में ऊंट न केवल परिवहन और कृषि कार्यों में उपयोगी हैं बल्कि दूध (ऊंटनी के दूध में भरपुर मात्रा में विटामिन सी पाया जाता है) और ऊन का भी उत्पादन किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त, ऊंट पालन आर्थिक और सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से उन समुदायों के लिए जो रेगिस्तानी क्षेत्रों में रहते हैं देश में ऊंट पालन न केवल एक आर्थिक गतिविधि है बल्कि यह एक सांस्कृतिक विरासत भी है जिसे संरक्षित करने की आवश्यकता है। सरकार और अन्य हितधारकों के प्रयासों से, ऊंट पालन को एक बार फिर से फलने फूलने की उम्मीद है राजस्थान सरकार ने ऊंट पालन को बढ़ावा देने और ऊंटों की संख्या में गिरावट को रोकने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं, जैसे कि ऊंट संरक्षण योजना जो ऊंट के बच्चों के जन्म पर बीस हजार रुपए का अनुदान प्रदान करती है 20 वीं पशुधन जनगणना (2019) के अनुसार, भारत में ऊंटों की कुल संख्या 2.5 लाख है, जबकि 2012 की जनगणना में यह संख्या 0.4 मिलियन (4 लाख) थी. इसका मतलब है कि पिछले कुछ वर्षों में ऊंटों की संख्या में 37.1 प्रतिशत की कमी आई है देश का 80 से 90 प्रतिशत ऊंट राजस्थान में पाला जाता है वर्तमान में लगभग 2.13 लाख ऊंट राजस्थान में है एक कूबड़ वाले ऊंट को अरबी ऊंट या ड्रोमेडेरीयन कहा जाता है जो मुख्य रूप से रेगिस्तानी इलाकों में पाया जाता है जबकि दो कूबड़ वाले ऊंट, जिन्हें बैक्ट्रियनस ऊंट कहते है जो मुख्य रूप से गोबी रेगिस्तान और मंगोलियाई मैदानों में पाए जाते हैं, इसके अतिरिक्त भारत में विशेष रूप से लद्दाख के नुब्रा घाटी में दो कूबड़ वाले ऊंट पाए जाते है ऊंट का जीवन काल लगभग 40 वर्ष का होता है राजस्थान सरकार ने 30 जून 2014 को ऊँट को राजस्थान के राज्य पशु का दर्जा दिया जिसकी घोषणा 19 सितम्बर 2014 को बीकानेर में की गई राष्ट्रीय ऊंट अनुसंधान केंद्र व ऊंटनी के दुग्ध कि डेयरी भी बीकानेर में स्थित है तथा ऊँट पालने के लिए रेबारी जाति प्रसिद्ध है व लोकदेवता पाबूजी को ऊंटो का देवता कहा जाता है।

प्रजनन - ऊंट मौसमी प्रजनक जीव होता है जो पतझड़ के अंत और सर्दियों के महीनों में यौन रूप से सक्रिय होते है मादा ऊंट का कामोत्तेजना चक्र 24 से 27 दिनों का होता है जिसमें अंडोत्सर्ग

ISSN: 3049-2211

(ओव्यूलेशन) या पीत-पिंड (ल्यूटियल) प्रावस्था स्वतः नहीं होती है अंडोत्सर्ग के लिए मैथुन क्रिया (कॉप्युलेशन) करना आवश्यक होता है इसके गर्भधारण की अवधि लगभग 13 से 14 महीने (390 से 420 दिन) की होती है जन्म के समय ऊंट के बच्चे का वजन लगभग 35 से 40 किलोग्राम होता है तथा ऊंटों में संभोग (कॉप्युलेशन) की क्रिया को राजस्थान में ष्लखानाष् व छोटा बच्चा टोडया कहलाता है, ऊंट का रट या मस्त नर ऊंटों में प्रजनन के मौसम को दर्शाता है मस्त अवस्था में नर ऊंट अपने गले में एक विशेष थैली होती है जिसे ष्डुल्लाष् कहते है जिसे फुलाता हैं और उसे बाहर निकालता हैं, जिससे एक विशिष्ट आवाज निकलती है इस कारण नर ऊंट का यह व्यवहार मादाओं को आकर्षित करने और अन्य नर ऊंटों को दूर भगाने में सहायक होता है।

आहार प्रबंधन - ऊंट खुले में चरना पसंद करते है ये हरी घास, झाड़ियों व पेड़ पौधों जैसे गोखरू, खीम्प, बुई,केर, खार, पाला, बेर, खेजड़ी, बबूल, खेरी,नीम आदि खाते है शुष्क चारे में इनको सुखाकर भण्डारण किया हुआ ज्वार, बाजरा, मक्का, तारामीरा आदि की तुड़ी व चना, मोंठ, मूंग व ग्वार का भूसा खिलाते है तथा दाने के रूप में बाजरा व जौ का आटा, गुड़, चना, मोंठ, मूंग व ग्वार चूरी, ग्वार, चारा, मटर का भूसा,मक्का, गेंहूँ, तिल की खल,तारामीरा एवं सरसों की खल आदि को दाने के रूप में खिलाया जाता है ऊंटों को रोगों से बचाने के लिए सन्तुलित एवं पोष्टिक आहार दिया जाना चाहिए। सान्द्र आहार में 2 प्रतिशत मिनरल मिक्सर तथा 50 ग्राम नमक मिलाकर देना चाहिए इसके अलावा मक्का, जई, बाजरा, जौ, गेहूं, की चौकर एवं पिसे हुए चने के साथ में आहार में नमक आवश्यक रूप से मिलाना चाहिए इसके साथ साथ किसान साथी जो ऊंट पालन करते है उन्हें हर 3 माह के अन्तराल पर कृमिनाशन दवा भी देनी चाहिए ऊंटों को प्रतिदिन 20 से 40 लिटर साफ पानी कि आवश्यकता होती है सर्दी या बहुत ज्यादा धूप या मौसम खराब होने पर ऊंट को शेड के नीचे बांधना चाहिए।

ऊंट कि नस्ले - भारत में ऊँट की कुल 9 पंजीकृत नस्लें हैं।

1. **बीकानेरी नस्ल** - बीकानेरी नस्ल भारत में पाई जाने वाली प्रमुख ऊँट नस्लों में से एक है। इस नस्ल का नाम बीकानेर शहर के नाम पर पड़ा है, जिसकी स्थापना राव बीका ने 15वीं शताब्दी में की थी और यह अपनी बेहतर भार वहन क्षमता के लिए जानी जाती है बीकानेर ऊँट मुख्यतः बीकानेर और उसके आस-पास के जिलों, जैसे राजस्थान के श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, चूरू, झुंझुनू, सीकर और नागौर, तथा हरियाणा और पंजाब राज्य के निकटवर्ती भागों में पाले जाते है बीकानेरी नस्ल के ऊँट भारी शरीर वाले और आकर्षक होते हैं, साथ ही इनका रूप भी अच्छा होता है। इनकी ऊँचाई अच्छी, शरीर की बनावट मजबूत और व्यवहार में सक्रिय होते है इनके बालों का रंग भूरे से काले तक भिन्न होता है, हालाँकि कुछ जानवरों में लाल रंग का भी रंग पाया जाता है। इनका शरीर सुडौल और सिर थोड़ा गुंबद के आकार का होता है। आगे के सिर पर आँखों के ऊपर एक सुस्पष्ट गड्ढा (अंतराल या स्टॉप) होता है जो इस नस्ल की प्रमुख विशेषता है तथा नाक लंबी होती है और सिर के दो-तिहाई हिस्से तक फैली होती है। इस नस्ल के कुछ ऊँटों की भौंहों, पलकों और कानों पर बालों की प्रचुर वृद्धि होती है, जिन्हें झीपड़ा कहते हैं।

2. **जैसलमेरी नस्ल** - यह नस्ल राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर और जोधपुर जिले के कुछ हिस्सों पाली जाती है तथा जैसलमेरी ऊँट सक्रिय स्वभाव के होते हैं और लंबे और पतले पैरों वाले काफी लंबे होते है इनका सिर और मुँह छोटा और थूथन संकरा होता है सिर पतली गर्दन पर और आँखें उभरी हुई व माथा गुंबद के आकार का नहीं होता और आँखों के ऊपर कोई गड्ढा नहीं पाया जाता इसके अलावा, इनकी भौंहों, पलकों और कानों पर बालों की कोई घनी वृद्धि नहीं होती शरीर का रंग मुख्यतः हल्का त्वचा पतली और शरीर पर छोटे बाल होते हैं। थन का आकार ज्यादातर गोल व ऊँट की एक मध्यम आकार की नस्ल होती है।

3. **जालोरी नस्ल** - इस ऊँट की नस्ल का दूसरा सांचोरी भी है। इस नस्ल का भौगोलिक वितरण मुख्यतः राजस्थान के जालौर और सिरोही जिलों में फैला है जालोरी ऊँटों का प्रमुख रंग भूरा होता है हालाँकि ये हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग तक भिन्न होता है इस नस्ल के ऊँट का सिर मध्यम आकार और पतली सुडौल गर्दन आँखें उभरी हुई होती हैं। बीकानेरी ऊँट के विपरीत, जालोरी ऊँट का माथा गुंबद के आकार का नहीं होता है तथा इस नस्ल के ऊंटों में सिर पर स्टॉप भी नहीं पाया जाता है।

4. **कच्छी नस्ल** - कच्छी नस्ल के ऊंट गुजरात राज्य के कच्छ क्षेत्र में पाए जाते है इसका प्रमुख प्रजनन क्षेत्र गुजरात के कच्छ और बनासकांठा जिलों में फैला हुआ है इस नस्ल के ऊँट आमतौर पर भूरे से गहरे भूरे रंग के जिनकी पलकों और कानों पर बाल नहीं होते है व शरीर पर घने बाल होते है सिर मध्यम आकार का जिस पर कोई स्पष्ट स्टॉप नहीं होता तथा शरीर का आकार मध्यम भारी और दिखने में भद्दे होते है इनके पिछले हिस्से मजबूत, पैर भारी, पैरों के तलवे सख्त और मोटे होते हैं और ये कच्छ की आर्द्र जलवायु और दलदली भूमि के लिए अच्छी तरह अनुकूलित होते है कुछ जानवरों में निचला होंठ लटकता हुआ होता है, जिसके कारण दूर से ही दांत दिखाई देते है।

5. **मालवी नस्ल** - इस नस्ल के ऊंट मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में पाए जाते है तथा इस नस्ल के ऊँट आमतौर पर मध्यम आकार के और मजबूत शरीर वाले होते है जिनका रंग अक्सर भूरे से लेकर लाल-भूरे रंग का होता है और इनका कूबड़ अच्छी तरह विकसित होता है ये ऊँट अर्ध-

ISSN: 3049-2211

शुष्क और थोड़ी अधिक आर्द्र, दोनों ही परिस्थितियों के लिए अच्छी तरह अनुकूलित होते है इस नस्ल के ऊँट अपनी सहनशक्ति और शक्ति के लिए जाने जाते हैं, जो उन्हें भार ढोने और परिवहन तथा कृषि कार्यों सहित अन्य कार्य करने के लिए उपयुक्त बनाते है।

6. मारवाड़ी नस्ल - ऊंट कि यह नस्ल राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में पाई जाती है मारवाड़ी ऊँट मध्यम से बड़े आकार के और मजबूत शरीर वाले होते हैं। इनका कोट कलर आमतौर पर हल्के भूरे या लाल-भूरे रंग का होता है तथा ये ऊँट राजस्थान की शुष्क और अर्ध-शुष्क जलवायु के लिए अत्यधिक अनुकूलित होते है इन ऊंटों में अत्यधिक गर्मी को सहन करने की क्षमता पाई जाती है।

7. मेवाड़ी नस्ल - इस नस्ल के ऊंट मुख्यत मेवाड़ क्षेत्र मे पाए जाते है इस नस्ल के ऊंटों कि प्रमुख विशेषता है कि ये बीकानेरी ऊँटों से मोटे और थोड़े छोटे होते है इनके पिछले हिस्से मजबूत, पैर भारी और पंजों पर सख्त और मोटे पैड होते है ये यात्रा करने और पहाड़ियों पर बोझ ढोने के लिए उपयुक्त होते है व शरीर के बाल मोटे होते हैं, जो इन्हें जंगली मधुमक्खियों और कीड़ों के काटने से बचाते है शरीर का रंग हल्के भूरे से लेकर गहरे भूरे तक होता है, लेकिन कुछ ऊँट लगभग सफेद रंग के होते हैं। शरीर के रंग में ऐसी विविधता आमतौर पर ऊँट की अन्य नस्लों में नहीं देखी जाती, सिर भारी और गर्दन मोटी होती है। बीकानेरी ऊँट के विपरीत, मेवाड़ी ऊँट में श् स्टॉपश् नहीं होती, बल्कि इसका थूथन ढीला होता है (निचला होठ लटका रहता है) पूँछ लंबी और मोटी होती है। मादाओं में दूध की शिराएँ उभरी हुई होती है।

8. खराई नस्ल - इस नस्ल का मूल निवास स्थान गुजरात राज्य के कच्छ क्षेत्र का खराई है ये ऊंट मध्यम आकार के और मजबूत शरीर वाले होते हैं। अन्य ऊँट नस्लों की तुलना में इनका कोट अक्सर हल्के भूरे या स्लेटी रंग का होता है और इनका कूबड़ अपेक्षाकृत कम और स्पष्ट होता है खराई ऊँट कच्छ के तटीय और अर्ध-शुष्क वातावरण के लिए अत्यधिक अनुकूलित होते हैं। इनमें नमकीन और लवणीय वनस्पतियों पर चरने की एक अनोखी क्षमता विकसित हो गई है, जो ऊँट नस्लों में असामान्य है खराई ऊँट की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से एक उच्च लवणता के प्रति इसकी सहनशीलता है। ये लवणीय वनस्पतियों पर पनप सकते है तथा इस नस्ल के ऊंट लंबी दूरी की यात्रा करने और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भार ढोने में सक्षम होते है।

9. मेवाती नस्ल - मेवाती ऊंट कि नस्ल जिसे कोसी या मेहवाती भी कहा जाता है यह एक भारवाहक नस्ल है जो राजस्थान के अलवर और भरतपुर जिलों, हरियाणा के गुड़गांव और फरीदाबाद जिलों और उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में पाई जाती है यह नस्ल मजबूत और विनम्र होती है और भारी जुताई के लिए उपयोगी है।

ऊंट में होने वाले प्रमुख रोग -

1. ऊंट का सर्रा रोग - सर्रा रोग को तीबरसा और इसे गलत्या नाम से भी जाना जाता है। यह रोग रक्त परजीवी ट्रीपेनोसोमा इवासाई से होता है। यह परजीवी रक्त चूसने वाली मक्खी टेबेनस के काटने से एक ऊंटो से दूसरे पशु में फैलता है। बारिश के समय यह रोग ज्यादा फैलता है।

2. ऊंट माता रोग - यह एक बहुत ही खतरनाक और तेजी से फैलने वाला विषाणु जनित संक्रामक रोग है जो सबसे ज्यादा कम उम्र, बुड्ढे एवं कमजोर ऊंटों को प्रभावित करता है इस रोग में मृत्यु दर काफी कम होती है लेकिन ग्रसित ऊंट दूसरे रोगों जैसे निमोनिया आदि से प्रभावित होकर मर सकता है सामान्यतः यह रोग बारिश के मौसम में ज्यादा प्रभावी होता है।

कृषक मंच - सितम्बर 2025 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 सितम्बर 2025

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: